प्रताप-पुस्तक-मालाकी अठारहवीं पुस्तक ।

चीन की राज्यक्रान्ति ।

लेखक—

श्री सम्पूर्णानन्द वर्मा,
बी. एस-सी. एल. टी. ।

प्रकाशक—

प्रताप पुस्तकालय
कानपुर

प्रथम संस्करण २००० } १९२१ { मूल्य डेढ़ रुपया ।

प्रकाशक—
प्रताप पुस्तकालय,
कानपुर।

प्रथम संस्करण २०००
सितम्बर १९२१

मुद्रक—
पं० छविनाथ पाण्डेय,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
काशी।

विषय-सूची ।

		भूमिका	पृष्ठ
अध्याय	१	चीन का प्राचीन और मध्य कालिक इतिहास	१
,,	२	मन्चू राज्य की स्थापना	८
,,	३	मन्चू शासन में चीन की अवस्था	११
,,	४	अशान्ति के कारण	२२
,,	५	सुषुप्ति की समाप्ति	५६
,,	६	जागृति	७२
,,	७	विद्रोह का आरम्भ	८२
,,	८	विद्रोहियों का संगठन	९६
,,	९	विप्लव की वृद्धि	१०२
,,	१०	सर्कारी अस्थायी जीत	१०९
,,	११	संचाई और नेकिंग का पतन	११४
,,	१२	दर्बार की दुर्बलता	१२३
,,	१३	युआन के शान्ति-विषयक प्रयत्न	१३०
,,	१४	राजसत्ता का अन्त	१४५
,,	१५	प्रजातंत्र की स्थापना	१५८
,,	१६	राजक्रान्ति का दूरस्थ देशों पर प्रभाव	१६७
,,	१७	राजक्रान्ति के सामाजिक परिणाम	१७३
,,	१८	शिशु प्रजातंत्र की प्रारम्भिक कठिनायाँ	१७९
,,	१९	चीन का भविष्य	१८५

परिशिष्ट (क, ख, ग) पुस्तक में उल्लिखित चीनी इतिहास की प्रधानतम घटनाएँ । प्रधान सहायक पुस्तकों की सूची ।

भूमिका।

चीन के इतिहास के साथ भारतीय इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह दोनों ही पृथ्वी के प्राचीनतम सभ्य देशों में हैं। महाभारत के समय में भी इन दोनों के परस्पर व्यापार का प्रमाण मिलता है। इतना हीं नहीं, इन में सम्भवतः र नैतिक सम्बन्ध भी था। अस्तु, जो कुछ हो बौद्धका से यह सम्बन्ध और भी अन्तरंग हो गया। चीन उन देश में है जिन में सम्राट के प्रयत्न से बौद्ध धर्म के उपदेष्टा . . । थोड़े ही दिनों में इस धर्म ने चीन में प्राधान्य प्राप्त किया। उस समय से अब तक चीनी यात्री बौद्ध तीर्थों के दर्शनार्थ भारत आते हैं। चीनी के मठों मे बहुत सी संस्कृत पुस्तकें हैं स्वयं 'चीन' नाम भारतीयों का दिया हुआ है।

ऐसे देश के सुख दुख की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। यद्यपि कई कारणों से पिछले चार पांच सौ वर्षों में हमारा और चीन का सम्बन्ध पहिले की अपेक्षा ढीला पड़ गया पर उसका बीज अब भी है और तब तक रहेगा जब तक चीन में बौद्ध और भारत में आर्य्य धर्म्मावलम्बी हैं। मुसलमानी शासन काल में हमारी दृष्टि अगत्या संकुचित हो गयी, उधर मञ्चू शासन ने चीन के स्वतन्त्र जीवन का अन्त कर दिया। दोनों देश ऐसे आपद्ग्रस्त हुये कि उनको बाहर देखने का अवकाश ही न मिला पर अब वह बात नहीं है, चीन का कायापलट हो गया है और भारत में भी जागृति हो रही है। अतः वह पुरानी सहानुभूति फिरउदबुद्ध हो रही है।

सारे प्राच्य जगत में एक विचित्र प्रभा देख पड़ती है नये अरुणोदय के लक्षण प्रत्येक देश में प्रतीत होते हैं। जापान इस समय एशिया का बलवत्तम देश है। उस ने सब से पहिले पाश्चात्य सभ्यता को अपना कर अपने को पाश्चात्य सांचे में ढालने का प्रयत्न किया। इस का उस ने लाभ भी उठाया। योरप और अमेरिका ने सब से पहिले उस को सभ्य की उपाधि दी। योरोपियन आदर्शों के अनुसार और कोई इस उपाधि का पात्र है भी नहीं। एशिया में जापान ही एक ऐसा देश है जो तोप, बन्दूक, बम आदि की विद्या में पूर्ण निष्णात पाश्चात्य जगत की कुछ बराबरी कर सकता है। श्याम स्वतंत्र होते हुए भी अगराय है, फारस स्वतंत्र कहलाते हुए भी मृतप्राय है। जापान भी चीनका, और परम्परया भारतका ऋणी है। अतः उसके सुख दुःख की ओर चीन और भारतका, केवल इनका ही नहीं, प्रत्युत समस्त एशियाका–, ध्यान जाता है। जापानके विजयोंसे सारे एशिया का मुख उज्वल होता है, उस के पराभव से सारे एशिया का अपमान होता है।

इस भावने जापान को अनायास ही एशियाका नेता बना दिया। सभी देशों को जापान पर श्रद्धा होगयी, जापान सबका ही आदर्श बन गया वस्तुतः यह उसके लिये बड़ा भारी अवसर था। इतने बड़े महाद्वीप का नेता माना जाना कोई सामान्य बात न थी। यदि वह यह दायित्व भार सह सकता तो पृथ्वीके इतिहास में उसकी कीर्त्ति अतुल और यश अप्रतिम हो जाता पर उसमें पर्य्याप्त नैतिक बल था ही नहीं वह लोभका किंकर हो गया। अपने पड़ोसियों के स्वत्वापहरण में ही उसने अपनी नीति और शक्तिका महत्व समझा

परन्तु अदृष्ट प्रबल है। वह बुराईसे भी भलाई उत्पन्न कर देता है। जिस समय अमावास्या की रात्रि में आकाश काले बादलों से घिर जाता है उस समय घनीभूतमःस्वरूपी मेघमण्डल के गर्भ से विद्युल्लेखा प्रस्फुटित होती है। एशिया के हृदयाकाशको योरोपकी निष्प्रभसभ्यता तो दबा ही रही थी, जापान की स्वार्थमय नीतिने कालिमा को और भी गम्भीर बना दिया परन्तु इसी समय प्रजातंत्र के समुदाय ने इस बूढ़े महाद्वीप के निर्गत प्राय प्राणों को फिर से रोक लिया। आशा बेलि फिर लहरा उठी।

चीन कोई समान्य देश नहीं है। चीनकी जनसंख्या सारी पृथ्वी की जनसंख्या के पञ्चमाश से भी अधिक है। उसकी भूमि रत्नगर्भा है। अकेले होनन और शांसी प्रान्तोंमें इतना कोयला है कि यदि आज कलके समान सारी पृथ्वी में प्रति वर्ष साठ करोड़ टन (१ खर्व ६४ अर्ब मन) खर्च हो तो २०० वर्ष तक काम चल सकता है? अन्न इतना उत्पन्न हो सकता है कि बाहर से एक पैसे का अन्न न मँगा कर चीन अपनी बचत से अन्य कई देशों का पेट भर सकता है। यह सब होते हुए भी वह किसी गिनती में नहीं है। जो देश पृथिवी में सर्वश्रेष्ठ हो सकता है उसकी गिनती छोटे राष्ट्रों में होती है। जो दस पांच राष्ट्रों को चुटकी में मल सकता है उसकी रक्षा का भार जापान अपने ऊपर लेना चाहता है। जो अपनी सम्पत्ति से दो चार देशों को मोल ले सकता है उसको अन्य ऋणग्रस्त देशों से ऋण लेना पड़ता है।

यह अत्यन्त हीन और अपमानजनक अवस्था है और यही भावना चीनी राजक्रान्ति की जड़ है। जब तक चीनी प्रजा मोह निद्रा में पड़ी थी तब तक उसके मञ्चू विजेता भी

उसे दबा सकते थे और विदेशी राष्ट्र भी उसके साथ मन-माना व्यवहार कर सकते थे, पर चीन के जागृत होने पर ऐसा नहीं हो सकता। मञ्चू शासन तो पहिली अँगड़ाई में ही लुप्त हो गया। रहे विदेशी राष्ट्र वह भी ज्यों २ चीन सँभलता जायगा आप ही कुव्यवहार का साहस त्यागते जाँयगे।

चीनके पास उन्नतिके साधनोंकी कमी नहीं है इसमें सन्देह नहीं कि उसके मार्गमें बाधाएं अनेक हैं परन्तु हमको पूर्ण आशा है कि वह उन सब का अतिक्रमण कर जायगा। उसका उज्ज्वल अतीत उसके उज्ज्वलतर भविष्य की आशा दिलाता है और किसी का चाहे जो भाव हो पर हम भारत-वासी उसके सच्चे हितैषी हैं। हम इतना ही चाहते हैं कि जिस निःस्वार्थ देशभक्ति ने इस समय चीन को प्राणित कर दिया है वह हमारे भावशून्य हृदयों में भी आकर निवास करे।

यह पुस्तक राजक्रान्ति का सम्पूर्ण इतिहास नहीं कहला सकती। पूरा इतिहास लिखने के लिये बहुत बड़ी पुस्तक चाहिये। उस की पूरी २ सामग्री भी अभी नहीं मिल सकती यों कि इन घटनाओंको अभी बहुत थोड़ा समय हुआ है। इसका काम केवल इतना ही है कि राजक्रान्ति के कारणों, उसकी प्रधानतम घटनाओं और उसके परिणामों का दिग्दर्शन मात्र करा दे।

जालिपादेवी
काशी।
५. ३. ७९

सम्पूर्णानन्द।

चीन की राज्यक्रान्ति ।

प्रथम अध्याय ।

चीन का प्राचीन और मध्यकालिक इतिहास ।

अन्य प्राचीन देशों की भाँति चीन का भी बहुत सा प्राचीन इतिहास नहीं मिलता । यही ठीक २ नहीं कहा जा सकता कि 'चीन' शब्द की व्युत्पत्ति क्या है, क्योंकि यह शब्द शुद्ध चीनी भाषा का नहीं है । स्वयं चीनियों का विश्वास है कि वे पृथ्वी पर सब से प्राचीन और सब से सभ्य हैं और उनके विधान इत्यादि उनको साक्षात् स्वर्ग से मिले हैं । उनका यह भी विश्वास है कि ये दैवी नियम सृष्टि की उत्पत्ति से ज्यों के त्यों चले आते हैं और अब भी इन से उत्तम विधान बन ही नहीं सकते ।

चीन के सामाजिक संगठन में राज का स्थान सर्वोपरि माना गया है । किसी व्यक्ति के जीवन का स्वतंत्रतया कोई मूल्य नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति, राष्ट्र या राज की उन्नति का एक साधन है । इसी लिये चीन में कुल, शील, उपाधि आदि का मान नहीं होता; मान केवल सर्कारी पदवियों का होता है । राज का प्रमुख होने से ही सम्राट् सर्वोपरि आदर का पात्र माना जाता था । राज्यक्रान्ति के कुछ काल पहिले तक सम्राट् 'स्वर्ग-पुत्र *' कहलाता था और उसकी आज्ञा दैवी आज्ञा मानी जाती थी ।

---

* चीनी सम्राट् के लिये 'स्वर्ग-पुत्र' इसलिये लिखा गया कि जो चीनी शब्द है उसका यही पर्य्याय हो सकता है । इसका भाव प्रायः वही है जो हमारी भाषा में 'ईश्वर पुत्र' वा 'देव-पुत्र' का होता ।

इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि चीन का सम्राट् स्वेच्छाचारी होता था। इस में सन्देह नहीं कि पीछे से चीनी नरेश स्वेच्छाचारी हो गये थे पर पहिले ऐसा न था। जहां तक पता लगता है पूर्वकाल में चीन में कई छोटे २ राज थे, यह प्रायः सभी वातों में स्वतंत्र थे। पर इन सब के ऊपर एक सम्राट् होता था। जो इन छोटे राजों के अधिपतियों में से प्रबलतम होता, वही सम्राट् हो जाता। इसलिये अपनी स्थिति बनाये रखने के लिये सम्राटों को प्रजा के मत के अनुकूल चलना पड़ता था। इसी लिये अधीन राजों के अधिपतियों को भी प्रजा की इच्छाओं को प्रत्येक बात में पालन करना पड़ता था। स्वेच्छाचारिता की नींव तो तब पड़ी जब देश में शान्ति पूर्णरूपेण फैल गयी, छोटे राजों और उनके नरेशों का स्वातंत्र्य और वल वहुत कुछ कम होगया और सम्राट् का पद पैतृक होगया।

यों तो चीन की कथाओं में वहुत से नरेशों के नाम आते हैं पर सब से प्राचीन सम्राट् जिनका अस्तित्व ऐतिहासिक कहा जा सकता है ह्वांगटी थे। वहुत से विद्वानों का मत है कि चीनी पहिले कास्पियन झील के दक्षिणी किनारे पर रहते थे और वहां से आकर धीरे २ चीन में बसे थे। वीच में उनको वहुत सी जंगली जातियों से लड़ना भी पड़ा था पर वरावर उनकी ही जीत होती गयी। जो कुछ हो, ह्वांगटी के समय तक यह लोग चीन में अवश्य वस गये थे और जो जंगली जातियां थीं वह या तो इनमें मिल गयी थीं या इनके अधीन थीं। ह्वांगटी विक्रम से लगभग २७०० वर्ष अर्थात् इस समय से लगभग ४६५० वर्ष पूर्व राज करते थे। उन की महारानी सेलिंगशी ने पहिले २ रेशम के कीड़ों को रेशम बनाते देख कर रेशमी कपड़े वनाने की विद्या का आविष्कार किया था। ह्वांगटी की समाधि अभी तक शेंसी में है।

इन के पीछे दो तीन सौ वर्ष तक का फिर किसी प्रसिद्ध नरेश का प्रामाणिक पता नहीं चलता। इस समय के उपरान्त आज से लगभग ४२०० वर्ष पूर्व याऊ नाम के एक सम्राट् हुए। याऊ के पीछे शुन और शुन के

पीछे यू साम्राज्य के अधिपति हुए। यह तीनों ही नरेश बड़े बुद्धिमान और प्रतापी थे। इनके शासनकाल में साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा और समृद्धि भी बहुत रही। यू इन सब में प्रतापशाली थे पर उनके पीछे जितने सम्राट् हुए सब विषयपरायण और राजधर्म्मपराङ्मुख होते गये, यहां तक कि, की नामक सम्राट् को, जिसका शासनकाल आज से लगभग ३७१३ वर्ष पूर्व था, प्रजा ने सिंहासन से उतार दिया।

जिन विद्रोहियों ने की को राजच्युत किया था उन के नेता का नाम तांग था। यह बड़ा ही सच्चरित्र और योग्य मनुष्य था। इस लिये प्रजा ने इसे ही सम्राट् चुना। इसका वंश शंग वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उसने लगभग ६०० वर्ष राज किया। विक्रम से १०६७ वर्ष पूर्व अर्थात् युधिष्ठिर सम्वत् १९४२ में इसका अन्त हो गया।

अब चाउ नाम का एक व्यक्ति सम्राट् हुआ। यह बड़ा ही दुष्ट स्वभाव का और प्रजा-पीड़क नरेश था। इसके या इसके उत्तराधिकारी के शासनकाल में कोचीन-चीन से कुछ राजदूत आये थे। घर लौटती समय उनको मार्ग भूल जाने की आशंका थी। इसलिये, जैसा कि प्राचीन काग़ज़ों से पता लगता है, उनको एक 'दक्षिण-दिशा-सूचक चक्र' दिया गया। विद्वानों का मत है कि यह 'चक्र' 'ध्रुव दर्शक' यंत्र रहा होगा। इस से प्रतीत होता है कि उस प्राचीन काल में चीन वाले चुम्बक के गुणों से परिचित थे और उन से काम लेते थे।

चाउ के वंश के शासनकाल में ही चीन के प्रसिद्ध नैतिक नेता काँग फूत्सी (कांफ्यूशियस) का जन्म हुआ। उस समय के सम्राट् का नाम लिंग था। काँगफूत्सी एक निर्धन घराने के व्यक्ति थे पर उनके हृदय में अपने देश के नैतिक सुधार की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। उनके मत में चीन के प्राचीन सम्राट् आदर्श पुरुष और उनकी आज्ञाएँ आदर्श आज्ञाएँ थीं। अतः इन्होंने उन सम्राटों की जीवनियों और उनकी आज्ञाओं का संग्रह किया। काँगफूत्सी की जो कुछ शिक्षा है वह इसी प्राचीन स्रोत से निकली है

और उसका मूल मंत्र है 'आज्ञापालन'। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह राजाज्ञा को अनिवार्य्य मानकर उस का सहर्ष पालन करे पर यह तभी हो सकता है जब आज्ञापालन का अभ्यास पहिले से पड़ा हो। इसी लिये लड़कों का यह कर्तव्य हुआ कि माता पिता की आज्ञा को अनिवार्य्य मानकर उसका पालन करें। माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने से लड़का प्राणदण्ड तक का पात्र हो जाता है। काँगफूत्सी के सिद्धान्त चाहे अच्छे हों या बुरे, उन का प्रभाव चीनियों पर बड़ा ही गम्भीर पड़ा है। इसका एक कारण यह है कि राज ने इन सिद्धान्तों के प्रचार में बड़ा उत्साह दिखलाया, क्योंकि ऐसा करने से प्रजा आज्ञाकारी बनायी जा सकती थी।

युधिष्ठिराब्द २८३६ के लगभग चाउ वंश का भी पतन हुआ। जिस नये वंश के हाथ में साम्राज्य आया उसका नाम त्सीन था। उस समय भारत और चीन में बहुत कुछ व्यवहार होने लग गया था। कहा जाता है कि भारतीयों ने त्सीन का अपभ्रंश चीन कर दिया और फिर धीरे २ यही नाम राजवंश से उतर कर समस्त प्रजा और देश के लिये प्रयुक्त होने लगा। फिर भारतीयों के दिये हुए चीन नाम से मुसल्मानों ने चीन और यूरपवालों ने 'चाइना' लिया। सम्भव है यही बात हो क्यों कि जैसा कि हम पहिले लिख आये हैं चीन शब्द चीनी भाषा का नहीं है।

इस त्सीन कुल का प्रथम सम्राट ह्वांगटी था! यह भी एक विचित्र मनुष्य था। यह चाहता था कि उस समय के पीछे आने वाले लोग उसे पृथ्वी का प्रथम राजा समझें अर्थात् भविष्य की जनता यह मान ले कि सृष्टि के आदि में ह्वांगटी ही प्रथम सम्राट् हुआ। पर यह तभी हो सकता था जब उस से पहिले के समय के अस्तित्व का कोई प्रमाण ही न रह जाय। इसी उद्देश्य से उसने जितने ग्रंथ और पुराने कागज़ मिले नाश करा डाले और ४६० विद्वानों को जीता गड़वा दिया! फिर भी उसकी मनोकामना पूरी न हुई, क्योंकि उस के पुत्र की मृत्यु से उस के

कुल का ही अन्त हो गया और कांगफूत्सी की पुस्तकोंकी कुछ छिपी छिपाई प्रतियों के मिल जाने से प्राचीन काल का वृत्तान्त भी मिल गया।

इसी सम्राट् के समय में चीन की 'बड़ी भीत' बनी। उन दिनों चीन की उत्तरी सीमा पर रहने वाले तातारी बड़ा उपद्रव करते थे; उन्हीं को रोकने के लिये यह भीत उठाई गयी। इसको बनाने के लिये चीन के तिहाई पुरुष काम में लगाये गये थे। यह चिहली, शानसी, शेनसी और कानसुह इन चार प्रान्तों में होती हुई ७५० कोस तक चली गयी है। इस की ऊँचाई २० से ३० फुट तक है और दो २ सौ की दूरी पर ४० फुट ऊँचे बुर्ज हैं। इस के नीचे का भाग १५ से २५ फुट मोटा और ऊपरी भाग १२ फुट चौड़ा है।

ह्वांगटी के कुल के अन्त हो जाने पर कुछ काल तक अशान्ति रही। कई भिन्न राजकुल वारी २ आये। पर कोई वहुत दिनों तक टिक न सका। इस समय का विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता और जो कुछ मिलता है उस में कोई महत्त्व की वात नहीं है।

इन अल्पस्थायी कुलों के पीछे हान वंश के हाथ में साम्राज्य आया। यह कुल सं० १६८६ विक्रमी तक राज करता रहा। इसके शासनकाल में चीन ने वड़ी उन्नति की। कई नये प्रान्त जीते गये और कई अन्य देशों के नरेशों ने चीनका आधिपत्य स्वीकार किया। इस बात को स्मरण कर के चीनी अभी तक अपने को 'हानकी सन्तान' कहते हैं।

इस हानकुल के शासनकाल में ही चीन में बौद्ध धर्म्म ने प्रवेश किया। यह घटना मिंगती नामक सम्राट् के समय की है। एक रात उन्होंने स्वप्न में अपने पलंग पर सोने की मूर्ति देखी जिसने उन को पश्चिम की ओर मनुष्य भेज कर बुद्ध की मूर्तियों और बौद्ध धर्म्म की पुस्तकों के मँगवाने की आज्ञा दी। उन्होंने तत्काल ही कुछ लोगों को भारत भेजा (सं० ८६ विक्रमी)। यह लोग अपने साथ कई मूर्तियां और पुस्तकें ले गये। इनके साथ ही भारत से कश्यप मतंग नामके एक बौद्ध

साधु गये। इनके पीछे और भी कई भारतीय साधु चीन गये जिनमें से गोभरण और कुमारजीव (जो सम्राट् याओ हिसंग सं० ३५१ के राज गुरु हुए) अधिक प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगों का मत है कि जो पहिले भारतीय साधु गये थे, या पहिले के कुछ ही पीछे गये थे, वह प्रसिद्ध साधु नागार्जुन थे।

उस समय से भारत चीनियों के लिये पवित्र देश होगया। न जाने कितने चीनी यात्री यहाँ बुद्ध के जन्म और निर्वाणस्थान, काशी, बोधगया इत्यादि का तीर्थ इस्टया दर्शन करने आते थे। इनमें यूएनथ्सांग और फाहिएन सब से प्रसिद्ध हैं। यूएनथ्सांग को तो यात्रि-राज कहना चाहिये। जिस समय वह भारत आये चीन में बड़ी अशान्ति फैल रही थी। राजाज्ञा यह थी कि न कोई बाहर जाये न भीतर आवे पर यूएन ने इसकी परवाह न की। मार्ग में अनेक २ कष्ट हुए। कभी २ उनको चार २ दिन तक बिना अन्न, जल के रहना पड़ा पर वह सच्चे जिज्ञासु और मुमुक्षु थे। अतः उन्होंने यह सब सहर्ष सहन किया। भारत आकर उन्होंने बड़े परिश्रम से संस्कृत पढ़ी और कहा जाता है कि समाधिस्थ होकर बुद्ध भगवान के दर्शन भी किये। वह इस देश में १६ वर्ष (सं० ६८५ से सं० ७०१ तक) रहे और जाते समय अपने साथ बहुत सी संस्कृत पुस्तकें ले गये। चीन लौटने पर इनका बड़ा आदर हुआ। देहान्त समय तक इन्होंने ७४ बौद्ध पुस्तकों का संस्कृत से चीनी में अनुवाद कर डाला था। इन्होंने सम्राट् हर्ष के शासन और नालन्द आदि भारतीय विद्यापीठों का अच्छा वर्णन किया है। यह भारतीय जहाज़ों में जावा आदि होते हुए चीन लौटे थे।

फा-हिएन [या हिआन] सं० ४५६ के लगभग आये थे। उस समय इस देश से बौद्ध धर्म्म का प्रभाव उठ चला था और वैदिक धर्म्म का पुनः प्रचार बढ़ रहा था। पर प्रधान धर्म्म अब भी बौद्ध ही था।

चीन में बौद्ध धर्म्म का कुछ विरोध हुआ सही पर वह बहुत ही हल्का हुआ। इसका कारण यह था कि अपने जन्मदाता सनातन धर्म्म की भाँति बौद्ध धर्म्म भी सहनशील था। उस ने कांग-फूत्सी के सिद्धान्तों की

जड़ काटने का प्रयत्न ही नहीं किया। अतः इस समय भी चीनियों के धार्म्मिक विश्वासों में दोनों प्रकार के सिद्धान्तों का मेल है।

हानकुल के पीछे फिर वही दशा हुई। कई राजकुलों ने साम्राज्य का सूत्र अपने २ हाथ में लिया पर इन में से कोई अधिक प्रतापी न था। इन कुलों के नाम क्रमात् कान, तंग और सुंग थे। इस समय की एक वात स्मरणीय है। सम्वत् ८६८ में फुंग-टाउ नामक एक व्यक्ति ने पुस्तक छापने की विद्या निकाली। जो पुस्तक चीन में छपती थीं वह लीथा छापे के सदृश होती थीं। पर यह गौरव की वात है कि यह विद्या चीनियों ने यूरपवालों के पहिले आविष्कृत की।

सुंग कुल के पीछे मिंग कुल का राज हुआ। इस कुल ने सं० १३१२ से १५८७ तक शासन किया। इसका पहिला सम्राट् हुंग वू था। यह बड़ा प्रतापी और शूरवीर नरेश था पर इसके पश्चाद्वर्ती नरेश वैसे योग्य न हुए। इनमें से अन्तिम का नाम सुंगचिंग था। इस के समय में चीन में मञ्चुओं का प्रवेश हुआ। यह घटना अगले अध्याय में वर्णित होगी।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह चीन के प्राचीन और मध्य कालिक इतिहास का एक दिग्दर्शन मात्र है। इसमें दो एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बातों को छोड़कर, केवल राजनैतिक घटनाओं का संक्षिप्त परिचय कराया गया है क्योंकि इस पुस्तक के लिये इतना ही पर्य्याप्त है। पर इस संक्षिप्त विवरण से ही दो एक परिणाम निकाले जा सकते हैं। यदि ह्वांगटी को ही चीन का प्रथम सम्राट् मान लिया जाय तो उस से लेकर त्सुंगचिंग तक लगभग ४२८७ वर्ष होते हैं। इस वीच में कई बार अशान्ति फैली, कई वार तातार मंगोल, मुसल्मान आदि जातियों ने उपद्रव किया पर अन्त में चीन स्वतंत्र ही रहा। यह कुछ कम गौरव की बात नहीं है। तिस पर सभ्यता और सभ्य कलाओं में उन्नति करते जाना और भी प्रशंसा की बात है।

द्वितीय अध्याय।

मञ्चू राज्य की स्थापना।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि त्सुंगचिंग मिंग कुल का अन्तिम नरेश और चीन का अन्तिम चीनी सम्राट् था। उसी के शासनकाल में चीनियों ने अपनी चिर-सुरक्षित स्वतंत्रता खो दी। इस दुर्घटना के कारण वही थे जो ऐसे अवसरों पर पृथ्वी पर अन्यत्र भी देखे गये हैं। ऐसा बहुत कम हुआ है कि एक जाति, विशेषतः एक बहुसंख्यक, सभ्य और समृद्ध जाति, को दूसरी जाति ने केवल अपने बाहुबल से दबा लिया हो। प्रायः यही देखा गया है कि जातियों ने घरेलू कलह से अपने को दुर्बल बना कर अपना स्वातंत्र्य खो दिया है। भारत का इतिहास ही इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरणों की खानि है।

यही अवस्था चीन की हुई। कई अयोग्य सम्राटों की परम्परा ने राज का बल कम कर दिया था। इस का फल त्सुंगचिंग को भोगना पड़ा। उसके सिंहासन पर बैठने के कुछ ही काल पीछे ले-त्सेचिंग और शंग-होहे नामक दो व्यक्तियों ने विद्रोह खड़ा किया। इन्होंने सोचा कि पृथक् काम करने से हमारे आपस में लड़जाने की भी सम्भावना है जिस से सम्राट् हम दोनों को दबा देंगे। अतः इन दोनों में यह निश्चय हो गया कि 'ले' तो होनन प्रान्त ले और शंग स्जेच्वान और हूक्कांग।

इस सन्धि से इनका बल और बढ़ गया और फलतः सर्कार का बल और घट गया। प्रजा भी उदासीन सी ही थी उस ने भी राज की कोई विशेष सहायता न की।

कैफुंग-फू नामक एक बड़ा नगर है। उस में कुछ सर्कारी सेना थी। यह सेना नगर के भीतर के क़िले में थी। 'ले' ने इस क़िले को घेरा। सर्कारी सिपाही वीर थे। उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि शत्रु के हाथ में क़िला

न जाने देंगे। कुछ दिनों में उनकी सारी खाने की सामग्री समाप्त हो गयी। तब उन्होंने मनुष्य का मांस खाना आरम्भ कर दिया, पर हार न मानी। इतने में एक सर्कारी सेना वहाँ पहुँची। उसके सेनापति को 'ले' से लड़ने का तो साहस हुआ नहीं उसने पीली नदी का बांध काट दिया। फल यह हुआ कि 'ले' के बहुत से सिपाही डूबकर मर गये। साथ ही दो लाख नगरवासी भी मारे गये। 'ले' फिर भी बच गया।

अब उसने सीधे राजधानी पेकिंग को ही आ घेरा। राज महल में एक हिजड़ा रहता था जो उसका गुप्त सहायक था। उसने चुपके से फाटक खोल दिया। फिर क्या था, 'ले' भीतर घुस आया। जब सम्राट् को इस बात को सूचना मिली तो उन्होंने आत्महत्या करली। बस, अब तो कोई रुकावट थी ही नहीं। 'ले' स्वयं राजा बन गया।

उन दिनों मंचूरिया की सीमा पर एक सर्कारी सेना थी। उस के सेनापति को यह बात बड़ी बुरी लगी। उसने मंचुओं के सर्दार से 'ले' को निकालेने में सहायता चाही। सर्दार ने भी सहर्ष सहायता देना स्वीकार कर लिया।

यह मंचू लोग तातार जाति की एक शाखा हैं। उस समय में यह लोग आधे जंगली थे इन से चीनियों से नित्य ही कुछ न कुछ झगड़ा लगा रहता था, इसी लिये सीमा पर सेना रखनी पड़ती थी।

अस्तु, मंचू सेना पेकिंग की ओर चली। जब 'ले' को यह समाचार मिला तो उसने पेकिंग में आग लगादी और आप भाग निकला। पर उसको शीघ्र ही अपने दुष्कर्म्मों का दण्ड मिलगया। वह जल्दी ही पकड़ा गया और मार डाला गया।

अब विद्रोह तो दमन हो गया अतः मंचुओं को लौट जाना चाहिये था पर उन्होंने ऐसा न किया। पृथ्वी के इतिहास में ऐसा कई बार हुआ है कि एक जातिने दूसरी जाति को अपनी सहायता के लिये बुला कर धोखा खाया है। जो दुर्बल है वही दूसरों से सहायता माँगता है, फिर दुर्बल

के देश में आकर कौन जाता है? 'वीर भोग्या वसुन्धरा' ठीक हो या न हो पर 'बलवद्भोग्या वसुन्धरा' में कोई सन्देह नहीं। भारत के इतिहास में इसके भी अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं।

कहाँ मंचूरिया और कहाँ चीन? ऐसे समृद्धि शाली देश को छोड़ कर चले जाना—यह पाठ मंचुओंने पढ़ा ही न था। अतः उन्होंने चीन में अपना साम्राज्य स्थापित किया। चीनी देखते ही रह गये। आपस की फूट ने उनकी सहस्रों वर्ष की स्वतंत्रता को बात की बात में मिट्टी में मिला दिया।

मंचू राज कुल का नाम ता–त्सिंग था। इसका पहिला सम्राट् शुनचे था। वह सं० १५८८ में गद्दी पर बैठा। उस ने चीनियों को सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने का बड़ा प्रयत्न किया। उसको विद्या से भी बड़ा प्रेम था अतः उस के समय में राज्य में कोई विद्रोहादि उपद्रव नहीं हुआ।

उसका लड़का कंगही भी बड़ा विद्या प्रेमी था। साथ ही, वह पराक्रमी भी बड़ा था। तिब्बत उसीके समय में चीन के आधिपत्य में आया। कंगही के पीछे युंगचिंग और युंगचिंग के पीछे कीनलंग सम्राट् हुआ। इस ने 'इली' प्रान्त को जीता और नैपाल को हरा कर कर देने पर विवश किया।

उसका लड़का की-किंग सं० १७३६ में गद्दी पर बैठा। यह बड़ा क्रूर स्वभावका नरेश था। इसके २५ वर्ष के शासन में प्रजा अत्यन्त दुःखी रही। इसी के समय में लार्ड मैकार्टनी विलायत से राज दूत बना कर भेजे गये पर उन्होंने काउटाउ* करना स्वीकार न किया, इसलिये उसी दिन लौटा दिये गये।

सं १७६४ में इसकी मृत्यु हुई।

इस के पीछे की घटनाएं आधुनिक काल से सम्बन्ध रखती हैं अतः उनका उल्लेख आगे के अध्यायों में होगा।

---

* काउटाउ, साष्टाङ्ग दण्डवत की भाँति का एक प्रकार का प्रणाम है।

तृतीय अध्याय ।
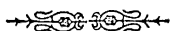
मंचू शासन में चीन की अवस्था ।

मञ्चुओं के विषय में एक बात स्मरण रखने योग्य है । वह विदेशी होते हुए भी चीन में आकर वस गये थे । उनकी परिस्थिति प्रायः वैसी ही थी जैसी कि भारत में मुग़लों की थी । विजेता होने के कारण उनके कई प्रकार के विशेष अधिकार थे और वहुत कुछ सुख था पर साथ ही इसके चीन वालों से वह वहुत कुछ मिल जुल गये थे । चीनी बहुत से ऊँचे २ पदों पर नियुक्त हो सकते थे यहां तक कि बड़े २ प्रान्तों के क्षत्रप (सूवेदार या गवर्नर) और मंत्री भी चीनी होते थे । चीनी धर्म्म मंचुओं ने भी स्वीकार कर लिया । यहां तक कि सम्राट् भी उन सव औपचारिक कृत्यों और पूजाओं को करते थे जो पहिले के चीनी सम्राट् किया करते थे । मंचुओं ने चीनको इतना अपना लिया कि अव उनके पुराने देश मंचूरिया में उनकी जाति के शुद्ध मंचू प्रायः हैं ही नहीं ।

इस लिये शासन के विषय में जो कुछ लिखा जायगा उस के लिये केवल मंचुओं का ही दायित्व नहीं है । वहुत से अंशों में उन्हों ने चीन की पुरानी पद्धति को ज्यों की त्यों रहने दिया ।

पर इस का यह तात्पर्य्य नहीं है कि विजित और विजेता में कोई अन्तर रह ही नहीं गया । अन्तर बहुत कुछ था । मंचू लोग प्रायः अपनी ही भाषा वोलते थे; सेना में उच्चतम स्थान प्रायः मंचुओं को ही मिलते थे; राजकुल मंचू होने से उस पर प्रायः मंचू सर्दारों का वड़ा प्रभाव पड़ता था । चीनी पुरुष जो स्त्रियों की भांति लम्बी चोटी रखते थे वह मंचुओं का ही प्रसाद था और चीनियों के दासत्व का एक चिन्ह था ।

अव मैं मंचू शासन के कुछ अंगोंका दिग्दर्शन कराऊंगा क्यों कि इसके बिना आगे की घटनाएं ठीक २ समझ में नहीं आ सकतीं ।

१—शासन पद्धति।

चीन में अठारह प्रधान प्रान्त है। यह बहुत सी बातों में पूर्णतया स्वतंत्र हैं। प्रान्तिक स्वराज जितना चीन में था उतना और किसी देश में नहीं है। प्रत्येक प्रान्त अपना पृथक् कर (टैक्स) लगाता था, अपनी पृथक् पुलीस रखता था, अपने पृथक् न्यायालय रखता था, यहां तक कि प्रत्येक प्रान्त की सेना तक पृथक् थी। प्रत्येक प्रान्त में एक क्षत्रप (गवर्नर) होता था और दो या तीन क्षत्रपों पर एक सम्राट्-प्रतिनिधि (वाइसराय) होता था।

प्रत्येक प्रान्त में सत्तर से सौ तक 'हीन' होते हैं। 'हीन' ज़िले को कहते हैं। हीनों का क्षेत्रफल हमारे भारतीय ज़िलों के बराबर होता है। जनसंख्या भी उतनी ही होती है। प्रत्येक 'हीन' में एक मजिस्ट्रेट होता है अब तो इन मजिस्ट्रेटों के अधिकार बहुत कम हो गये हैं नहीं तो पहिले इन की वही ऊँची परिस्थिति थी जो आजकल भारतवर्ष में ज़िलों के मजि-स्ट्रेटों की है।

कहीं २ एक बिचित्र बात होती थी। दो २ तीन २ 'हीनों' के मजि-स्ट्रेटों के दफ्तर एक ही नगर में होते थे अर्थात् एक ही नगर दो तीन 'हीनों' में बँट जाता था। ऐसी दशा में चोरों को बड़ी मौज थी। एक 'हीन' में कुछ अपराध करके, तुरन्त उसी नगर के किसी दूसरे मुहल्ले में जो किसी दूसरे 'हीन' में होता चले जाते। जब तक मजिस्ट्रेट साहब लिखा पढ़ी करें तब तक आप तीसरे 'हीन' में पहुँच जाते। अब यह कुप्रबन्ध जाता रहा है।

अधिकार तो इतना था पर वेतन बहुत ही कम था। बँगाल के बरा-बर प्रान्त के क्षत्रप का वेतन कुल ७५) (पचहत्तर रुपया) प्रतिमास होता था। फिर भी यह लोग लाखों रुपया कमाते थे। बेईमानी या घूस लेना सामान्य बात थी। सर्कारी नौकरियाँ खुलकर बिकती थीं प्रान्तिक क्षत्रपों का तो कहना ही क्या है, स्वयँ चीन सर्कार के बजट में नौकरियों की बिक्री को स्थान दिया जाता था। यह बात नीचे दिये हुए एक साल के बजट से स्पष्ट हो जायगी।

आय

लेखा	तेल (१ तेल २।) रु० के लगभग होता है)।
मालगुज़ारी	२६, ४१०, ०००
नमक से लाभ	५, ७५४, ०००
बाहरी माल पर टैक्स	९, ४१९, ०००
नौकरियों की बिक्री	३, ०००, ०००
चाय, मछली, खान, घास, इत्यादि	३२२, ०००
ट्रॅंस्फ़र फ़ी	१६०, ०००
चुँगी और फुटकर	८९८, ०००
	४४, ८६४०,०००

पृथ्वी पर शायद ही कोई और गवर्नमेंएट ऐसी बात खुल कर लिखती होगी।

गुप्तचरों और जासूसों की भरमार थी। ऐसा कोई गाँव नहीं था जिस में दो चार सर्कारी जासूस न रहते हों। यह लोग रत्ती रत्ती की सूचना गवर्नरों को देते थे। यह कहने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं कि यह सूचनायें झूठी या आधी झूठी आधी सच्ची होती थीं। हाँ प्रजा को इनके द्वारा बहुत कुछ हानि अवश्य पहुँचती थी। यह कोई नई बात हीं है। जहाँ शासक विदेशी होते हैं और प्रजा की इच्छा के अनुसार काम नहीं करते वहाँ ऐसी ही युक्तियाँ चलायी जाती हैं। जो लोग भारतीय सी० आई० डी० के गुणों से परिचित हैं वह इन बातों को भली भाँति समझ सकते हैं। ठीक इसी प्रकार चीनी जासूस चीनी प्रजा के लाभालाभ को न देखकर मन्चू अफ़सरों को प्रसन्न करना ही अपना कर्तव्य समझते थे।

यह सब तो इन लोगों के सुप्रबन्ध की गाथा हुई। अब इन की योग्यता और अधिकारों के दुरुपयोग को देखिये। जब लार्ड नेपियर अँग्रेज़ सर्कार की ओर से व्यापार के विषय में निश्चय करने केंटन गये, तो वहाँ के गवर्नर साहब ने उनके भेजे हुए पत्र को लौटा दिया और यह कहला

भेजा "आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ की कोई विदेशी जंगली * पत्र भेजने का साहस करे। दैवी + साम्राज्य के उच्च पदाधिकारी व्यापार की तुच्छ वातों पर दृष्टि नहीं डालते। अँग्रेज़ जाति से जो दो चार लाख व्यापार के टैक्स के रूप में मिलते हैं उनके लिये दैवी साम्राज्य एक वाल या पर के रोएँ के वरावर भी परवाह नहीं करता। इनका होना या न होना क्षण भर के गम्भीर विचार के भी योग्य नहीं है।"

इस उत्तर को भेज कर गवर्नर साहव ने अपनी योग्यता और दूर-दर्शिता का कितना अच्छा परिचय दिया है। जिस शासन में ऐसे २ बुद्धिमानों को इतने अधिकार दिये जाते थे उसका कहना ही क्या है।

२—रक्षा।

देश की रक्षा के तीन साधन हैं (क) सन्तुष्ट और देशभक्त तथा राजभक्त प्रजा, (ख) सामान्य प्रजा में शस्त्र शिक्षा का प्रचार और (ग) सुशिक्षित सेना।

मञ्चू राज्य में प्रजा कहाँ तक सन्तुष्ट और राजभक्त थी या रह सकती थी यह तो स्पष्ट ही है, हाँ चीन के लोग देशभक्त अवश्य थे। दूसरी वात यह थी कि आस पास कोई प्रवल देश था भी नहीं, और जो थे उनपर चीन के पुराने नाम की धाक वैठी हुई थी, इसी लिये सैकड़ों वर्ष तक प्रतिष्ठा वच गयी।

प्रजा में शस्त्र शिक्षा का प्रायः अभाव था। हमारी ब्रिटिश सर्कार की भाँति 'शस्त्र विधान' वनाने की वात तो मञ्चुओं को सूझी नहीं इसलिये जो चाहे शस्त्र रख सकता था। पर चीनियों को शस्त्र विद्या से

---

* इन लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी में चीन के सिवाय सभी देश जङ्गली और असभ्य हैं और यह विदेशियों के लिए जङ्गली शब्द का ही प्रयोग करते थे।

+ चीनी अपने साम्राज्य को दैवी साम्राज्य कहते थे।

अञ्चित रखने के लिये और उपाय निकाले गये । सामान्य मनुष्य सैनिक विषय की पुस्तकें नहीं पढ़ सकता था । यदि किसी के पास ऐसी पुस्तकें निकल आतीं तो बड़ा कड़ा दण्ड मिलता था । प्रजा को ऐसी शिक्षा दी गयी, कि शस्त्र धारण करना एक प्रकार का पशुवत् आचरण है । इस कूटनीति का यह परिणाम हुआ कि धीरे २ चीनियों में यह विश्वास जम गया कि सिपाही की वृत्ति वड़ी निन्दित और नीच है और अच्छे लोगों को इससे दूर रहना चाहिये ।

अब सेना को लीजिये । ८ मञ्चू सेनाएँ थीं । इनको ८ झण्डे कहते थे । इन में ३ झण्डे शेष ५ से ऊंचे माने जाते थे । इन के अतिरिक्त कुछ मंगोल और कुछ चीनी झण्डे थे । इन चीनी झण्डों में वही पतित चीनी थे जिन पर मञ्चू सर्कार को पूर्ण भरोसा था । सब मिला कर २४ झण्डे थे । इन में लगभग २००,००० या २२०,००० सिपाही थे ।

इन में से कई झण्डे तो पेकिंग के आस पास रहते थे । शेष, प्रान्तों में बँटे थे । प्रत्येक बड़े नगर में कुछ न कुछ सिपाही रहते थे ।

झण्डे वालों की वृत्ति पैतृक थी, अर्थात् झण्डे वालों के कुल में जन्म होते ही एक रजिस्टर में नाम लिख लिया जाता था और तभी से उस व्यक्ति का सिपाही होना निश्चित हो जाता था । उसको वेतन का अधिकार भी प्राप्त हो जाता था ।

प्रत्येक प्रान्त में झण्डों के वेतन के लिये रुपया पहिले निकाल लिया जाता था । अकेले पेकिंग में प्रतिवर्ष ८,०००,००० तेल (१८,०००,००० रु०) व्यय होता था । इसके अतिरिक्त इनको कई प्रकार के अधिकार प्राप्त थे । प्रत्येक प्रान्त की राजधानी में जो सेनापति रहता था वह प्रान्तीय क्षत्रप से बड़ा माना जाता था ।

इन सब कारणों से चीनी इन से जलते थे । यह बात तो स्पष्ट ही थी कि यह लोग चीनियों को दबाने के ही लिये प्रान्त २ नगर २,

बाजार २ में रक्खे गये थे। इनके दुर्व्यवहार, दुर्भिमान और अयोग्यता ने प्रजाको और भी रुष्ट कर रक्खा था।

इनकी अयोग्यता भी सामान्य नहीं, असाधारण थी। नाम को तो बच्चा २ सिपाही था और वेतन पाता था पर वस्तुतः बड़े छोटे सेनापति लोग रुपया हड़प कर लेते थे; जो कुछ बचता था वह थोड़े बहुत सिपाहियों को मिलता था। वह लोग भी उस, वेतन नहीं, एक प्रकार का पैतृक हक़ समझने लग गये थे।

बहुत दिनों तक कोई बड़ी लड़ाई भी नहीं पड़ी, जिससे कि इन लोगों को कुछ युद्ध का अभ्यास बना रहता। परिणाम यह हुआ कि यह सब निरे आलसी और दुर्व्यसनी हो गये। पहिले तो यह क़लई खुली नहीं पर जब चीन में यूरोपियन आये और उन लोगों के साथ लड़ना पड़ा तब सारी पोल खुल गयी। किया क्या जाय, सर्कार इन व्यर्थ की सेनाओं को तोड़ भी नहीं सकती थी। इस लिये इनके सपुर्द तो पुलिस का काम किया गया और लड़ने के लिये अधिक वेतन देकर नये मनुष्य भरती किये गये। तब से पुराने सैनिकों को 'सिपाही' और नयों को 'वीर' कहने लगे।

वीरों और सिपाहियों में जो भेद था वह नीचे के पत्र से प्रकट हो जाएगा यह पत्र सिपाहियों के एक कर्नल (त्सोलिंग) ने एक उच्च सर्कारी कर्मचारी के पास भेजा था। "अन्ततो गत्वा, सिपाही और वीर में कोई वास्तविक भेद नहीं है। दोनों ही मनुष्य हैं। यदि तुम वीरों के समान मेरे सिपाहियों को वेतन दो तो वह भी वीर हो जायँगे। यदि मेरे सिपाहियों की भाँति वीरों को भूखे मारो तो वह भी सिपाही हो जायंगे। वीर या सिपाही होना पूरे वेतन, पर्य्याप्त खाना, समुचित शिक्षा और अच्छी बन्दूकों पर निर्भर है।"

आगे चलकर इन वीरों से भी काम न चला और चीन को यूरोपियन ढंग की नयी सेनाएँ भरती करनी पड़ीं।

३—शिक्षा ।

शिक्षा का सर्कारी प्रबन्ध जितने प्राचीन काल से चीन में होता आता है उतने दिनों से और किसी देश में नहीं हुआ । चीन की सारी शिक्षा का मूल परीक्षण था । परीक्षोत्तीर्ण होने के लिये ही विद्या पढ़ी जाती थी, क्योंकि इससे लाभ बहुत था । परीक्षोत्तीर्ण लोगों को ही सर्कारी नौकरियाँ मिलती थीं । न तो कुल देखा जाता था, न शील, न किसी और बात की योग्यता । बस परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए । हाँ, यह दूसरी बात थी कि जगहें कम होतीं और उनके इच्छुक बहुत; इसलिये गवर्नर आदि को घूस लेने और नौकरी बेचने का अवसर मिलता था ।

तीन परीक्षाएँ होती थीं । जो लोग पहिली में उत्तीर्ण होते उनको 'प्रफुल्ल प्रतिभा' जो दूसरी में उत्तीर्ण होते उनको 'उन्नत पुरुष' और जो तीसरी में उत्तीर्ण होते उनको 'प्रविष्ट विद्वान' की उपाधि मिलती थीं ।

पहिली परीक्षा प्रति तीसरे वर्ष प्रत्येक 'हीन' के मुख्य नगर में होती थी, दूसरी परीक्षा भी तीसरे वर्ष ही होती थी, पर पहिली के कुछ मास पीछे और प्रान्तीय राजधानी में और तीसरी परीक्षा पेकिंग में होती थी । इस के लिये सर्कार समुचित समय निर्धारित कर दिया करती थी ।

इन परीक्षाओं में चीन के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर गद्य निबन्ध लिखने पड़ते थे और पद्य रचना करनी पड़ती थी । जिसको सचमुच प्रतिभा कहते हैं उसका काम ही नहीं था । इस बात की प्रतीक्षा ही नहीं की जाती थी, कि विद्यार्थी अपनी बुद्धि से कोई नई बात सोचे। नवीनता या बुद्धि की स्वतंत्रता से मञ्चूशासन को आघात पहुंचता, इस लिये उसके उभरने का अवसर ही नहीं दिया जाता था। सन १८९८ में सम्राट् ने चाहा कि विज्ञान आदि की भी पढ़ाई हुआ करे पर उनकी भी न चलने पायी ।

जो लोग परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते उनको उपाधि और नौकरी मिलने के अतिरिक्त और भी कई लाभ थे । जो जैसी परीक्षा पास करता उसके अनुसार उसके घर पर कुछ सजावट होती, उसके वस्त्र में कुछ

विशेषता होती और सभाओं और भोजों में विशेष स्थान मिलता। इस से बढ़कर बात यह थी कि कोई न्यायालय उनको किसी अपराध के लिये शारीरिक दण्ड (जैसे बेत लगाना आदि) नहीं दे सकता था।

जो लोग नीचे की परीक्षा में निष्फल होते थे उनमें से ही ग्रामीण पाठशालाओं के मास्टर चुने जाते थे। यह भी एक प्रशंसा की बात है कि चीन में प्रायः प्रत्येक गाँव में एक पाठशाला है और इतने विशाल देश में अपठित मनुष्यों की संख्या बहुत ही थोड़ी है।

जो लोग तीसरी परीक्षा पास कर लेते थे उनकी सम्राट् के सामने एक विशेष परीक्षा होती और जो लोग इस में पास होते उन्हें मंत्रिमण्डल में पद मिलते। कभी २ इन पास हुओं की भी परीक्षा होती और उस अन्तिम परीक्षा में जो लोग उत्तीर्ण होते वह देश भर में सर्वोत्कृष्ट विद्वान माने जाते।

सन १६०३ में जो परीक्षाएं हुई थीं उनकी रिपोर्टों से पता चलता है कि कितने परीक्षार्थी होते थे और कितने पास होते थे। १७०५ स्थानों में आरम्भिक परीक्षा हुई। यह परीक्षा उपर्युक्त प्रथम परीक्षा देने के लिये योग्यता जांचने के लिये होती थी, २५२ नगरों में प्रथम परीक्षा और १८ में द्वितीय परीक्षा हुई।

प्रथम परीक्षा के लिये ७६०,००० परीक्षार्थी थे जिनमें से २८,६२३ पास हुए और द्वितीय परीक्षा के लिये १६०,३०० परीक्षार्थी थे जिनमें से ५५८६ पास हुए। प्रथम परीक्षा के लिए १ दिन में लेख लिखना पड़ता था, द्वितीय के लिये ३ दिनमें और तृतीय के लिये १३ दिन में। जब तक लेख पूरा न हो जाय तब तक परीक्षार्थी लोग क़ैदियों की भाँति पृथक् २ कोठरियों में बंद रक्खे जाते थे।

इतने ही दिग्दर्शन से पता लग जायगा कि, चीन का शिक्षण क्रम क्या था और वह लोगों को कहां तक आज कल के जीवन के योग्य बनाता था।

४--लोगों की सामाजिक दशा।

जिन बातों का ऊपर उल्लेख हो चुका है उनसे ही जनता की सामाजिक दशा का अनुमान हो सकता है। विदेशी शासन में रहने वाली प्रजा से यह आशा करनी कि उसकी सामाजिक दशा उन्नत हो, भूल है। विदेशी शासकों का मूल उद्देश्य अपना, और अपनी जाति का, कल्याण रहता है। वह विजितों का कल्याण वहीं तक चाहते हैं जहां तक कि स्वयं उनके कल्याण का सम्पादन हो। यही अवस्था चीन में थी। ऐसा बड़ा देश और ऐसी परिश्रमी प्रजा का नाश हो रहा था क्योंकि जनता के निरुत्साह रहने में ही मञ्चुओं का हितसाधन था ?

न्यायालय अवश्य थे पर सिवाय बड़े २ अफ़सरों के और कोई मनुष्य सर्कारी क़ानून नहीं जानने पाता था। ऐसी अवस्था में जैसा कुछ न्याय होता रहा होगा और न्यायाधीशों को रुपया कमाने का जैसा कुछ अवसर मिलता रहा होगा वह स्पष्ट ही है।

कैण्टन के गवर्नर साहब ने लार्ड नेपियर को जो उत्तर दिया था उस से व्यापार का भी अनुमान हो सकता है।

गवर्नमेण्ट प्रजा को इतना दबाती थी कि जब कभी सम्राट् बाहर निकलते तो लोगों को पृथ्वी पर एक दम लेट जाना पड़ता था।

विशेष ब्योरे की कोई आवश्यकता नहीं है, इतना ही कहना पर्याप्त है कि प्रजा के जीवन में उन्नति का पता नहीं था, उन्होंने मञ्चुओं के आगमन के पहिले जो परिस्थिति प्राप्त की थी उससे एक पाँव भी आगे न बढ़े, वरन् पीछे ही हटते गये। हां, उनमें और विदेशी शासन में रहने वाली अन्य जातियों में केवल एक बड़ा अन्तर था। चीन के विदेशी शासक भी एक प्रकार स्वदेशी हो गये थे; वह चीन में ही बस गये थे और महान् अन्तरों के होते हुए भी विजेता और विजित, शासक और शासित, में बहुत कुछ साम्य हो गया था। दो तीन सौ वर्ष साथ रहते २ द्वेष भी कम हो चला था और मञ्चू लोग उतना अत्याचार नहीं कर सकते थे जितना कि दूर

देशों में रहने वाले विदेशी शासक कर सकते हैं। उनको उसी देश में और चीनियों के बीच में ही रहना था। दूसरी बात यह थी कि मञ्चू चाहे कितना ही लूट खसोट करते, देश का रुपया देश में ही रहता था। तीसरी बात यह थी कि मञ्चू लोगों ने चीन देश और चीनी सभ्यता को अपना लिया था। इस लिये यूरप आदि अन्य देश वालों के सामने चीनी और मञ्चू का कोई भेद नहीं था। चीनी सर्कार चीन के नाम पर सारी प्रजा की ओर से और सारी प्रजा के पक्ष पर बोलती थी।

५—धार्मिक विश्वास।

भारत की भांति चीन भी प्राचीन काल से ही धार्म्मिक बातों में अत्यन्त उदार रहा है। काङ्गफूत्सी के सिद्धान्तों के साथ २ बौद्ध धर्म्म का भी प्रचार होता गया। आपस में कभी कोई विरोध नहीं हुआ। जो काङ्गफूत्सी के अनुयायी थे उन्होंने बौद्ध धर्म्म से ध्यान, त्याग, अहिंसा आदि की शिक्षा ग्रहण की। बौद्धों ने काङ्गफूत्सी के अनुयायियों से पितृपूजा सीखी। परिणाम यह हुआ कि दोनों सिद्धान्तों के संमिश्रण से कुछ ऐसे सद्विचारों का प्रचार हो गया जो चीन की तत्कालीन आध्यात्मिक भूख को शान्त करने के लिये पर्य्याप्त थे।

ईसाई धर्म्म के साथ भी पहिले पहिल यही भ्रातृभाव वर्ता गया। पर उन्होंने स्वयं धर्म्म के साथ राजनीति को मिलाकर यह दशा पलट दी। इसका जो कुछ फल हुआ वह आगे दिखलाया जायगा।

(द) अन्तर्जातीय व्यवहार।

प्रत्येक सभ्य और स्वतंत्र राष्ट्र को अन्य सभ्य और स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध रखना पड़ता है, और इस सम्बन्ध के विषय में कुछ ऐसे नियमों का पालन करना पड़ता है जो प्रायः सर्वत्र माने जाते हैं। चीन को बहुत दिनों तक ऐसे सम्बन्ध और इन नियमों की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। उसके आस पास असभ्य जातियां थीं, अतः चीनी यह मान

बैठे थे कि पृथ्वी पर उनकी बराबरी का कोई देश ही नहीं था।

जापान तक को वह अपने अधीन मानते थे। एक विभाग था जो जंगली जातियों और कर देने वाले तथा अधीन देशों (जैसे नैपाल, तिब्बत, श्याम, अनाम, बर्म्मा आदि) का काम देखता था। जब यूरप वाले चीन में आने जाने लगे तो यूरोपीय राष्ट्रों से सम्बन्ध रखने वाले सारे विषय भी इसी विभाग को सौंप दिये गये।

कुछ दिनों योंही काम चला पर जब यूरोपियन राष्ट्रों के काम बढ़ गये और इन लोगों ने इस बात पर हठ किया कि हमारे साथ जंगलियों की भाँति नहीं, वरन् समुचित, व्यवहार किया जाय तब सन् १८६० में त्सुङ्गली यामेन (साधारण प्रबन्ध विभाग) नाम का एक अलग विभाग खोला गया जो परराष्ट्रों के साथ सम्बन्धों का निरीक्षण करने लगा। अब इसको वाइ-कियाओ-पू कहते हैं।

चतुर्थ अध्याय।

अशान्ति के कारण।

ऊपर के अध्याय में जिन बातों का उल्लेख हुआ है उनसे ही यह पता लग सकता है कि मंचू शासन स्थायी नहीं हो सकता था। वह इस योग्य नहीं था कि वर्त्तमान काल के सभ्य देशों के सामने ठहर सकता। पाश्चात्य देशों का सामना करने के लिये असाधारण परिवर्तनशीलता चाहिए, अपने को बहुत सी बातों में यूरोपियन रंग में रंग लेने की प्रवृत्ति चाहिए। यह बात मञ्चुओं में न थी। जो अपने को सर्वगुणसम्पन्न, सर्वविद्यानिष्णात सर्वोपरि शक्तिशाली समझता है वह दूसरे का अनुकरण नहीं कर सकता, दूसरे से शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकता। इस लिये मंचुओं का पतन होना अवश्यम्भावी था।

पर वह पतन अन्य भाँति होता। जो शासन उन्नति शील नहीं है, उसका पतन होता है परन्तु परराष्ट्रों के हाथ से। विदेशी लोग उसकी अयोग्यता से लाभ उठाकर उसे दबा लेते हैं। परन्तु चीन में ऐसा नहीं हुआ। मंचू शासन का पतन किसी परराष्ट्र द्वारा नहीं प्रत्युत स्वयं उसकी प्रजा के हाथ हुआ।

ऐसी बात सामान्य नहीं है। बिना किसी विशेष कारण, या कई विशेष कारणों के, प्रजा विद्रोह नहीं किया करती। दो एक कारण तो स्पष्ट ही हैं। मंचू विदेशी थे। यह ठीक है कि वह अब चीन के ही निवासी हो गये थे और बहुतसी बातों में उनमें और चीनियों में साम्य हो गया था परन्तु फिर भी उनका विदेशित्व नहीं गया था। बहुत सी बातों में मंचुओं को विशेष अधिकार प्राप्त थे; अनेक अवसरों पर चीनियों को अपनी हीन अवस्था का अनुभव होता था। यह अवस्था राजनैतिक अशान्ति के लिये क्षेत्र का काम करती है। विजेता लोग अपने स्वार्थमय

स्वत्वों को चिरस्थायी बनाये रखने के लिये जिन उपायों का आश्रय लेते हैं वही उपाय विजितों के हृदयों को जलाते हैं। उनको पद २ पर अपनी हीन दशा की स्मृति दिलायी जाती है और उनका मानसिक घाव सदा हरा रहता है।

दूसरी बात यह थी कि मंचू शासन न्यायशील नहीं था। जहां प्रजा को विदेश के कानूनों का ज्ञान ही न हो वहाँ न्याय का क्या पूछना है। दिन दहाड़े पक्षपात हो होगा। फिर जिस देश में सर्कारी नौकरी खुल कर बिकती हो, वहाँ न्याय तो बिकना ही चाहिए। यह भी एक ऐसी बात थी जो प्रजा को असन्तुष्ट रखती थी।

पर इतने ही से विद्रोह नहीं हुआ करता। अनेक देशों में विदेशी शासन है, अन्याय भी है, पर लोग चुपचाप सह लेते हैं। स्थितिस्थापकता जड़ ही नहीं, चैतन्य जगत में भी काम करती है। मनुष्य जिस दशा में रहता है उसे जल्दी परिवर्त्तन नहीं करता। जब कोई ऐसी ही असामान्य बात होती है तब जनता की मोहनिद्रा टूटती है। अतः हम को यह जानना चाहिए कि वह विशेष कारण कौन से थे, जिन्होंने चीनी प्रजाको जगा दिया।

इन कारणों पर विचार करने के पहिले एक बात को स्मरण रखना चाहिए। चीनी प्रजा में अभी तक जातीयता का भाव विद्यमान था; विजित होने पर भी उन्होंने अपनी सभ्यता द्वारा अपने विजेता मंचुओं को भी जीत लिया था; विदेशियों की दृष्टि में चीनी और मंचू में उतना भेद नहीं था जितना कि प्रायः विजित और विजेता में होता है; चीन में कोई ऐसा विधान नहीं था जो प्रजा के पुंस्त्व का अपहरण करता हो। अतः चीनी प्रजा में बहुत कुछ जात्याभिमान, राष्ट्राभिमान और देशाभिमान अवशिष्ट था। अग्नि बुझ नहीं गई थी, धीरे २ भीतर सुलग रही थी; बाह्य संघर्षण की देर थी; उसके मिलते ही यकायक धधक उठी।

यों तो चीनी उत्थान के कई कारण थे पर उन सब का इस जगह वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ उन तीन या चार प्रधान कारणों पर ही

विचार किया जा सकता है जो दीर्घ प्रभावशाली, स्वतन्त्र, और महत्वपूर्ण थे। शेष कारण इनके सहकारी या अन्तर्गत थे।

(क) ईसाई धर्म्म की यूरोपियन संरक्षकता

हम अगले अध्याय में लिख आये हैं कि चीनी धर्म्म के विषय में अत्यन्त उदाराशय हैं। वह किसी के धार्म्मिक विचारों में विघ्न नहीं डालते। इतना ही नहीं, वह धार्म्मिक प्रचार में भी बाधा नहीं डालते। पर यूरोपियन जातियों ने उनको ऐसा करने न दिया। यूरोपियन जातियों के धर्म्म की आड़ में राजनैतिक शिकार खेलने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जब किसी यूरोपीय राष्ट्र की किसी देश पर कुदृष्टि पड़ती है तो वहां कुछ ईसाई मिशनरी और पादरी भेज दिये जाते हैं। यह लोग वहां जाकर अपना धर्म्म फैलाते हैं और वहां के लोगोंके रहन सहन को यथाशक्ति बिगाड़ते हैं। जिन लोगों को नये ईसाई बनाते हैं उनको तो देश और समाज का पूरा शत्रु बना देते हैं। परिणाम यह होता है कि लड़ाई झगड़ा होता है और एकाध पादरी मारा जाता है। बस इसी बात का बहाना लेकर उसकी सर्कार उस बेचारे देश के सिर हो जाती है। ऐसा सब जगह न होता हो, पर अनेक स्थलों में यूरप के राष्ट्रों ने इस कूट नीतिका आश्रय लिया है और देश के देश हड़प गये हैं। इस नीति में एक बड़ा मज़ा यह है कि अपनी स्वार्थ सिद्धि होती है और दोष दूसरे पर लगता है। यह आज कल की बुद्धिमत्ता और नैतिकता का एक प्रमाण है। जैसा कि सर जान वुडरॉफ अपनी 'इज़ इण्डिया सिविलाइज़्ड' (Sir John woodroffe: Is India Civilized ?) में लिखते हैं " But the vulgarity of turning religion into a means of money-making and Empire buliding has been reserved for our political and commercial time" "परन्तु धर्म्म को राज्य बढ़ाने और धन कमाने का साधन बनाना एक ऐसी नीचता

है जो हमारे राजनैतिक और व्यापारी काल के लिये ही रख छोड़ी गयी थी ।"

यह सब ईसाई धर्म्म का दोष नहीं है । ईसा योगी और महापुरुष थे; उन्होंने कभी ऐसी खोटी शिक्षा नहीं दी । दोष उन राजनीतिज्ञों का है जो ऐसी नीति से काम लेते हैं; उनसे भी अधिक दोष उन पादरियों का है जो धर्म्मोपदेशक के पवित्र नाम को इस प्रकार कलंकित करते हैं ।

अस्तु, यही चाल चीन में चली गयी । चीन बहुत बड़ा देश है, इससे उस को निगल जाने का विचार तो स्यात् न रहा हो पर कम से कम यह उद्देश्य तो रहा ही होगा कि उस को कठिनाइयों में फँसा कर अपना दास कर लें और व्यापार (या दूसरे शब्दों में लूट) सम्बन्धी मनमाने अधिकार प्राप्त कर लें । इस नीतिका पालन वर्षों तक हुआ पर यहां सुभीते के लिये सब घटनाएँ एकत्र कर दी गयी हैं । नीति का जो कुछ परिणाम हुआ वह घटनाओंके पढ़ने से ही प्रकट हो जायगा ।

छोटे २ झगड़े तो कई हुए, और इनका होना स्वाभाविक था । जैसा कि पार्कर ने लिखा है । कई ऐसे सर्कारी टेक्स और कर थे जो चीन में सब ही को देने पड़ते थे पर जब कोई व्यक्ति ईसाई हो जाता तो पादरी लोग उन टेक्सों को धर्म्मविरुद्ध बतला उसे कर देने से मना करते । पार्कर के ही शब्दों में "Such religious animosity as exists has often had to thank the mistaken zeal of Roman Catholic and Protestant missionaries for its own birth & growth, or, as in the Boxer case, is indirectly owing to the 'blood of the martyrs' having been used for political gain" अर्थात् " जो कुछ धार्मिक वैमनस्य है उसका कारण या तो रोमन कैथालिक और प्रोटेस्टेण्ट पादरियोंका भ्रमपूर्ण उत्साह है या यह कि जैसा कि, बौक्सर विद्रोह में हुआ, धर्म्मवीरोंके रक्त से राजनैतिक लाभ उठाया गया है " (जैसा कि

आगे प्रतीत होगा, बौक्सर विद्रोह के समय कुछ पादरी मारे गये; इसी बात के बहाने यूरोपियन राष्ट्रों ने बहुत कुछ राजनैतिक लाभ उठाया)।

सं० १९०७ (सन् १८५०) के लगभग चीन में हुंग स्यूत्सउवान नाम का एक मनुष्य रहता था। वह सामान्य शिक्षा प्राप्त था पर बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे कोई उच्च पद न मिला। इससे उस का हृदय बड़ा दुःखी रहता था। ऐसी ही अवस्था में वह ईसाई हो गया। अब तो उसे विचित्र २ अनुभव होने लगे। यहां तक कि उसे ईश्वर और ईसा ने मञ्चुओं को निकाल कर नया राज्य स्थापित करने की आज्ञा दी।

हुंग अपने को एक प्रकार का ईश्वरीय दूत समझने लगा और क्वांग तंग और क्वांगसी प्रान्तोंमें एक नये धर्म्म का उपदेश करने लगा। यह धर्म्म ईसाई मतका एक रूपान्तर था जिसमें राजद्रोह को प्रधानता दी गयी थी। धीरे २ इसके साथी बढ़ चले और सं० १९१० (सन् १८५३) में इन लोगों ने नैंकिंग नगर ले लिया। वहीं हुंग ने अपने नवीन राजवंश की स्थापना की। इस वंश का नाम ताइपिंग (परम शान्ति) था। इसी से इस विद्रोह को ताइपिंग विद्रोह कहते हैं।

नैंकिंग की जीत के पीछे हुंग का सिर फिर गया। वह आलसी और दुराचारी हो गया और नित्य ईश्वर के नाम से नये २ विचित्र आदेश निकालने लगा। पर उसके साथी उत्साही थे और उनका सेनानी चुंग-वांग बड़ा ही वीर और योग्य सिपाही था।

वांग के नेतृत्व में इन लोगों ने पेकिंग की ओर बढ़नेका विचार किया। रास्ते में इनसे सर्कारी सेनाओं से कई लड़ाइयां हुईं जिनमें बहुधा इनकी जीत हुई। यदि उस समय चीन सर्कार को लि हुंग चांग, ऐसे योग्य मंत्री की सहायता न मिलती तो इस विद्रोह से न जाने कितना अनर्थ होता।

लि उन दिनों मंत्री न थे। वह घर पर ही रहते थे। पर जब उन्हों ने विद्रोहियों को पेकिंग की ओर बढ़ते देखा तो कुछ मनुष्यों की एक छोटी सी पल्टन प्रस्तुत करके वांग की सेनाके पीछे पड़ गये। यही लि की

वृद्धि की जड़ है। चीन सर्कार ने उनकी योग्यता देख कर विद्रोहदमन का सारा भार प्रायः उनपर छोड़ दिया।

वांग के मार्ग में शंघाई नगर पड़ता था। वहां के कुछ विदेशी (यूरोपियन) निवासियों ने उसको शंघाई जीतने में सहायता देने का वचन दिया। पर जब वह नगर के पास पहुंचा तो न जाने क्या समझ कर अपने वचन से फिर गये। अस्तु, इसी समय शंघाई के कुछ व्यापारियों ने एक पल्टन प्रस्तुत की। इसमें १०० यूरोपियन भी भरती थे और इसके सेनापति का नाम वार्ड था। वार्ड एक योग्य व्यक्ति था पर उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। उसका उत्तराधिकारी वर्गेवाइन दुष्ट मनुष्य था। पर अन्त में लि ने उसको निकलवाकर गार्डन को सेनापति बनाया। इसी सेना के प्रयत्न से धीरे २ ताइपिंग विद्रोह शान्त हो गया।

सं० १९२७ (सन् १८७०) में फिर एक झगड़ा हुआ। तेज्जिन नगर में कुछ फ्रेञ्च पादरी रहते थे। अपने नियमानुसार इन लोगोंने नये ईसाइयों का पक्ष लेकर अन्धेरं मचा रक्खा था। फल यह हुआ कि एक छोटा सा विद्रोह खड़ा हो गया जिस में पादरियों के अतिरिक्त फ्रेञ्च कॉंसल (फ्रांस का प्रतिनिधि) भी मारा गया। अन्त में लि ने जाकर झगड़ा ठण्डा किया।

अभी तक जिन झगड़ों का कथन हुआ है वह छोटे थे। उनका स्वयं कोई दृश्य स्थायी परिणाम नहीं हुआ। हां, यह हुआ कि चीनी और यूरोपियन में मनोमालिन्य बढ़ता गया और उस अन्तिम झगड़े के लिये क्षेत्र प्रस्तुत होता गया जिसका फल चीन आज तक भुगत रहा है।

सं१९५७ (सन् १९००) में चीन में सम्राट क्वांगह्सू राज कर रहे थे। यह शासन में कुछ सुधार करना चाहते थे परन्तु राजमाता त्सु त्सि सुधारों के विरुद्ध थीं और पुराने विचारों के सभी कर्म्मचारी उनका साथ देते थे। इन लोगों का पक्ष प्रबल था और फलतः सम्राट् की एक न चली। वह नाम २ के ही सम्राट् रह गये। सारा अधिकार राजमाता के हाथ में आ गया।

अब राजमाता और उनके अनुयायियोंने सुधारों की जड़ ही काट देने का विचार किया । जब तक चीन में यूरोपियन आते जाते रहेंगे तब तक किसी न किसी रूप में सुधारसमीर बहता ही रहेगा । अतः यदि सुधारों की धारा रोकना है तो पहिले यूरोपियनों से पीछा छुड़ाना चाहिए ।

बस यह लोग इसी का अवसर ढूँढ़ने लगे । अवसर शीघ्र ही मिल गया । उन दिनों चीन में 'आइ-हो कुआन' नाम की एक गुप्त सभा थी । सभा थी तो बहुत पुरानी पर उन दिनों उसका बल बढ़ गया था । इस नाम का अर्थ है "धार्म्मिक मेल का घूंसा" । इसी से इस सभा के सदस्य अंग्रेजी में 'बॉक्सर' अर्थात् 'घूंसा मारने वाले' नाम से प्रसिद्ध हुए ।

उन दिनों चीन में ईसाइयों का प्रभाव बढ़ रहा था । गाँव के गाँव ईसाई बनाये जा रहे थे और नये ईसाइयों में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उद्दण्डता की मात्रा बढ़ती जा रही थी । यदि कोई कुछ आक्षेप करे तो यूरोपियन पादरी अपने २ प्रबल सहायकों, यूरोपियन राष्ट्रों का आश्रय ले सकते थे । इस व्यवहार से चीन सर्कार के काम में भी अड़चन पड़ती थी और प्रजा में भी अशान्ति फैलती थी । इसी अशान्ति ने इस गुप्त सभा को विकास का अवसर दिया ।

सन् १९०० की जनवरी में शान्तुंग में चीनियों और ईसाइयों में कुछ दंगा हो गया जिसमें मिः ब्रुक्स नामक एक अंग्रेज़ पादरी मारा गया । अंग्रेज़ सर्कार ने इस बात को लेकर चीन सर्कार से वाद विवाद करना आरम्भ किया । चार महीने यों ही चले गये । ईसाइयों का दिमाग़ बढ़ता ही गया । परिणाम यह हुआ कि मई में फिर दंगा हुआ और कई चीनी ईसाई मारे गये । २ री जून को मिः नार्मन और मिः राबिंसन नामक दो अंग्रेज़ पादरी फिर मारे गये ।

बस अब तो आग फैल गयी । तेन्ज़िन से लेकर पेकिंग तक सारा प्रदेश बाक्सरों के हाथ में आ गया । पेकिंग में जो यूरोपियन और चीनी ईसाई थे इनको भी अत्यन्त भय था । अतः इन लोगों ने अंग्रेज़ी लिगेशन

[वह गृह जिसमें अंग्रेज़ी राजदूत रहता था] में शरण ली और इस घर तथा इस के आस पास के घरों की रक्षा सभी यूरोपीय देशों के तथा जापान के जो कुछ थोड़े बहुत सिपाही मिल सके उनके तथा देशी ईसाइयों के सपुर्द की गयी।

११ जून को जापानी लिगेशन का चैंसेलर मारा गया, १३ जून को कई गिर्जे लूट लिये गये और २० जून को जर्मन राजदूत मारा गया।

अभी तक यह नहीं कहा जा सकता था कि चीन सर्कार क्या करना चाहती है। सर्कारी सेनाओं ने अभी तक खुल कर बाक्सरों का साथ नहीं दिया था, यद्यपि यह सभी जानते थे कि राजमाता हृदय से इसी पक्ष की हैं। २० जून को सब सन्देह दूर हो गये। उस दिन सर्कारी सिपाहियों ने लिगेशनों पर गोले चलाये। चीन ने पृथ्वी के सभी प्रधान राष्ट्रों से एक साथ ही लड़ने की ठान ली। एक घोषणा द्वारा प्रजा को यह आज्ञा दी गयी कि सब विदेशी मार डाले जायँ। तीन कर्म्मचारियों ने इस आज्ञा के शब्दों को कुछ नरम बनाना चाहा। इसी अपराध में उनको फांसी दे दी गयी। बिचारे सम्राट् इन बातों के विरुद्ध थे पर उनकी सुनता ही कौन था।

यह बातें तो पेकिंग में हो रही थीं। उधर १० जून को ऐड्मिरल सेमोर २००० सैनिक लेकर तेज्जिन से पेकिंग की ओर बढ़े। इनमें अँग्रेज़ रूसी, जर्मन, इटालियन, जापानी, अमेरिकन, फ्रेंच और आस्ट्रियन सभी थे। यह लोग अधिक न बढ़ सके और फिर तेञ्जिन लौटना पड़ा। उधर चीनियों ने नगर को घेर लिया। इस पर सेमोर ने निकटस्थ पाइहो नदी के मुहाने के ताकू किलों के अध्यक्ष को लिखा कि किले खाली कर दिये जायँ। उस ने नहीं माना। पर २७ जून को क़िला और १४ जुलाई तक नगर भी इन लोगों के हाथ में आ गया।

अब इन लोगों को चाहिये था कि शीघ्र ही मिल कर पेकिंग पर बढ़ते पर आपस के झगड़ों ने ऐसा न करने दिया और बहुत सा समय यों ही नष्ट हुआ। किसी २ भांति ४ अगस्त को सर आल्फ्रेड गेसेली

तेज्जिन से निकले और १३ अगस्त को पेकिंग के पास पहुँचे। यहां सभी जातियों ने पेकिंग में प्रथम घुसने का प्रयत्न किया परन्तु सबसे पहिले कुछ सिक्खों के साथ सर आल्फ्रेड ही घुसे। १४ अगस्त को लिगेशनोंका, जो अब तक घिरे हुए थे, छुटकारा हुआ। फिर तो चीनियोंसे खूब ही बदला लिया गया। उधर १६ अगस्त को सम्राट्, राजमाता तथा अन्य प्रधान दर्बारी पेकिंग छोड़ कर सिंगनपू नामक नगर को चले गये।

सितम्बर में कौराट वानडर सी २०,००० जर्मन सेना लेकर आये। इनकी इच्छा थी कि चीन के भीतर प्रवेश किया जाय पर अन्य राष्ट्र, विशेषतः इंगलैण्ड और जापान ने इसका विरोध किया। उनको भय था, और यह भय ठीक था, कि इतने बड़े देश में जहां रेल नहीं, तार नहीं, रसद का प्रबंध नहीं, फंस कर निकलना कठिन होगा। अतः पेकिंग के आगे सेनाएँ नहीं बढ़ी। इस अवसर पर जर्मनों ने एक बड़ा ही नीच काम किया। पेकिंग वेधालय में कई अत्यन्त प्राचीन ज्योतिर्यन्त्र थे। उनको यह लोग जर्मनी उठा ले गये।

अब इन लोगों ने यह विचार करना आरम्भ किया कि किन शर्तोंपर संधि हो। अन्त में ५ प्रधान आरम्भिक शर्तें निश्चित हुईं और यह स्पष्टतया कह दिया गया कि पहिले चीनी इनको स्वीकार करलें फिर और बातें पीछे देखी जायँगी। वह ५ शर्तें यह हैं:—

(१) वैरन वान केटेलर (जर्मन राजदूत) और मिः सुगियामा (जापानी लिगेशन का चैंसलर) की मृत्यु के लिये निर्दिष्ट रूप के समुचित स्मारक और जहाँ २ विदेशियों की कब्रें तोड़ी गयी हों वहाँ २ प्रायश्चित्त रूपी स्मारकों का बनवाया जाना।

(२) जिन लोगों के उभारने या प्रोत्साहन से यह घटनाएँ हुईं उनको कठोरतम दण्ड दिये जायँ। अपराधियों के नाम मित्रराष्ट्रों (अर्थात् इंगलैण्ड, जापान, जर्मनी आदि) द्वारा चुने जायँगे।

(३) उपयुक्त और न्याय्य अर्थदण्ड—यह रुपया उन राष्ट्रों,

सभाओं और व्यक्तियों में बाँटा जायगा जिनको क्षति पहुँची है।

(४) चीन में बाहर से शस्त्रों और सैनिक सामग्रियोंका आना बन्द कर दिया जायगा; पेकिंग के जिस भाग में लिगेशन हैं उसकी क़िलेबन्दी हो जायगी और उसमें तत्तद्राष्ट्र की स्थायी पल्टनें रहेंगी; पेकिंग से समुद्र तक जितने क़िले हैं वह तोड़ दिये जायँगे और मार्ग में जो २ स्थान सैनिक दृष्टिसे उपयोगी प्रतीत होंगे वहाँ २ मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ रहेंगी।

(५) चीन में स्थान २ पर दो वर्ष तक इस विषय की घोषणायें लगा दी जायँ कि जो मनुष्य विदेशियों के विरुद्ध आन्दोलन करेगा उसको फाँसी दी जायगी और जिस वाइसराय या गवर्नर के प्रान्त में इस प्रकार का कोई विद्रोह होगा वह उसके लिये उत्तर दाता माना जायगा।

१४ जनवरी १६०१ को चीन के प्रतिनिधियोंने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया। अब व्योरे के निश्चय करने का समय आया। मित्र राष्ट्रों में आपस में बड़ा मतभेद था। रूस चाहता था कि चीन उसे मंचूरिया में कुछ विशेष स्वत्व दे दे, इसलिये वह बहुत सी बातों में चीन का पक्ष लेता था।

जब यह निश्चय होने लगा कि प्रधान अपराधी कौन २ हैं तो रूस के अनुरोध से राजमाता या अन्य किसी बड़े आदमी का नाम नहीं लिया गया। बिचारे सामान्य आफिसरों के सिर ही आपत्ति आई—कोई फाँसी चढ़ाया गया, किसी को आत्महत्या करनी पड़ी, कोई पदच्युत कर दिया गया। इसी प्रकार जब यह निर्णय होने लगा कि जिन लोगों को क्षति पहुंची है उनको क्या दिया जाय तो रूस चुपचाप रहा क्योंकि चीन में रूस के पादरियों को हानि पहुंची ही न थी। इस प्रश्न पर भी बड़ा वादविवाद रहा कि चीन को क्या अर्थदण्ड दिया जाय। तमाशे की बात तो यह थी कि जर्मनी जो बहुत पीछे सहायता दे सका और इटली जो बहुत ही कम सहायता दे सका सब से बढ़कर बोलते थे। अन्त में ४५०,०००,००० तेल [४५ करोड़ तेल १ अरब ३५ करोड़ रुपया] पर सर्व सम्मति हुई।

यह धन एक साथ तो दिया नहीं जा सकता था। इस लिये यह निश्चय किया गया कि जब तक यह पूरा न दे दिया जाय तब तक चीन की नमक, चुंगी, आदि की आमदनी मित्रराष्ट्रों के निरीक्षण में रहे।

जर्मन राजदूत की मृत्यु के लिये यह प्रायश्चित निश्चित हुआ कि चीन सम्राट् के सौतेले भाई राजकुमार चुन जर्मनी जाकर कैसर से क्षमा मांगे। जब यह जर्मनी पहुँचे तो इनसे कहा गया कि तुमको कैसर के सामने काउटाउ करना होगा। काउटाउ एक प्रकार का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम है। चीन में जो मनुष्य सम्राट के पास जाता उसे काउटाउ करना पड़ता था। पर यूरोपियन ऐसा नहीं करते थे। चीनी भी इस बात पर अड़ गये। उनका कहना था कि जब यूरोपियन हमारे सम्राट् के सामने काउटाउ नहीं करते तो हमारा प्रतिनिधि किसी यूरोपियन नरेश के सामने क्यों काउटाउ करे। अन्त में जर्मनों को यह बात माननी पड़ी और ४ थी सितम्बर को कैसर से क्षमा प्रार्थना भी हो गयी।

७ सितम्बर को संधि पर एक ओर दो चीनी प्रतिनिधियों और दूसरी ओर इंगलैन्ड, जर्मनी, फ्रांस, रूस, जापान, अमेरिका, आस्ट्रिया-हंगरी, इटली, हालैंड, बेल्जियम और स्पेनके प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर कर दिये। १७ सितम्बर को सिवाय लिगेशन विभाग के गारद के और सब विदेशी सिपाहियों ने पेकिंग खाली कर दिया। लगभग एक महीने पीछे सम्राट् आदि पेकिंग लौट आये।

पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि इन सब बातों का चीनी प्रजा पर क्या प्रभाव पड़ा होगा। विदेशियों पर तो क्रोध था ही, जिन्होंने कि पादरियों की मृत्यु का बहाना लेकर राजनैतिक लाभ उठाया पर उस चीनी सर्कार को क्या कहा जाय जिसने यह सब होने दिया? पहिले तो मञ्चुओं को चाहिए था कि प्रारम्भ से ही इतनी दृढ़ता दिखाते कि पादरियों का प्रभाव इतना न बढ़ने पाता कि वह उपद्रव करा सकें। फिर जब दो चार पादरी मारे गये तभी प्रबन्ध करके उपद्रव की वृद्धि रोकनी थी; जब यूरो-

पियन राष्ट्रों की दुरिच्छा का पता लग गया तो अपनी दुर्बलता को जानते हुए बाक्सरों को दबाना था जिससे कि यूरोपियनों को चीन में घुसने का बहाना ही न मिलता; यदि लड़ने ही की ठानी थी तो पहिले से तदनुरूप सामग्री और सेना प्रस्तुत कर रखनी थी। यह कैसा प्रबंध था कि सारे संसार से लड़ने का तो बीड़ा उठाया और अपने पास न सेना है, न सेनानी है, न सामग्री है, न शिक्षा है। सारी पृथ्वी से लड़ने चले और दो महीने भी न ठहर सके, उलटे राजधानी छोड़ कर भागे और देश का नाम व्यर्थ कलंकित किया। मञ्चुओं का तो कुछ बिगड़ा नहीं पर प्रजा का अपमान अलग हुआ, उसपर ४५०,०००,००० तेल का ऋण सिर चढ़ा।

इन बातों ने प्रजा के हृदय को सन्ताप, ग्लानि, क्रोध और अश्रद्धा से भर दिया। इसके साथ ही मञ्चुओं का जो कुछ राब और भय था वह भी जाता रहा। लोगों के हृदय में इस भावना ने घर कर लिया कि ऐसा दुर्बल और उन्नति विरोधी शासन जितना ही शीघ्र दूर किया जाय उतना ही अच्छा है।

(ख) जापान का अभ्युत्थान और उसकी अनुचित महत्वाकांक्षा।

जापान का अभ्युत्थान एक साधारण घटना नहीं प्रत्युत एक चमत्कारिक दृग्विषय है। इतने थोड़े काल में ऐसी अभूतपूर्व उन्नति करके जापान ने सभ्य जगत को आश्चर्य्य में डाल दिया है। योरप के राष्ट्र जो एशिया के अन्य देशों की भांति उसे भी अपने जेब में, या कम से कम पैर के नीचे, डालना चाहते थे आंखें मलते ही रह गये। बूढ़े एशिया के रगों में जापान का नाम सुन कर फिर से रक्त का सञ्चार होने लगा। कोई मंगोलियन के नाते, कोई बौद्ध के नाते, कोई कुछ नहीं तो एशियाई के नाते, सभी किसी न किसी सम्बन्ध से उसे अपना भाई, मित्र, हितेच्छु और सहायक मानने लगे।

जापान एक एशियाई देश है अतः उसके साफल्य पर सारे एशिया-

वासियों को हर्ष और गर्व होना स्वाभाविक ही है परन्तु यह कहना कठिन है कि लोगों ने उससे जो २ आशाएँ की थीं या की हैं वह कहां तक ठीक थीं या हैं। जापान के प्रति लोगों की जो श्रद्धा है उसको देखते हुए उस के विरुद्ध कुछ कहना या लिखना दुःसाहस सा प्रतीत होता है। पर इतिहास लेखक का कर्तव्य है कि वह सत्य के, अर्थात् जिसे वह सत्य समझता है, प्रकट करने में पक्षपात से काम न ले। सम्भव है मेरा विश्वास भ्रान्त हो, इश्वर करे ऐसा ही हो, परन्तु मेरा विश्वास है कि जापान ने अपने यूरोपियन गुरूओं से बहुत सी बुरी बातें सीखी हैं, जिनमें लोभ का स्थान प्रथम है। इस लोभ के वशीभूत होकर उसने उस उदारता को तिलाञ्जलि दे दी है जो प्राच्य जातियों का एक भूषण है। कम से कम चीन के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त संकीर्ण और घृणोत्पादक हुआ है।

जापान के अभ्युदय को देख कर पहिले तो चीन को विस्मय हुआ फिर हर्ष और उत्साह उत्पन्न हुए। परन्तु जापान के व्यवहार ने इन सब सद्भावों पर पानी फेर दिया। जापान की चेष्टाओं से यह प्रतीत हो गया कि उसकी इच्छा चीन का संरक्षक बनने की थी।

अन्य [अर्थात् यूरोपीय] जातियों की भाँति जापान ने चीन को दबाने के जो २ प्रयत्न किये उनका वर्णन तो इसी अध्याय के अगले खण्ड में होगा। इस खण्ड में हम जापान की अनुचित महत्त्वाकाँक्षा और दुर्नीति का एक ऐसा उदाहरण देंगे जो जापान के नाम को चिरकलङ्कित करने के लिये पर्य्याप्त है।

चीन के संरक्षित राज्यों में कोरिया का स्थान बहुत ऊंचा था। जितना कोरिया पर चीनी प्रभाव पड़ा था उतना और किसी देश पर नहीं पड़ा था। पर दुर्भाग्यवश यह देश जापान के निकट था। उधर रूसी साम्राज्य भी पास ही था और रूस जापान दोनों की कुदृष्टि इस पर पड़ रही थी और दोनों ही उसे हड़पलेने का अवसर ढूंढ़ रहे थे।

ऐसी दशा में लिहुंगचांग ने उसकी रक्षा का एक उपाय सोचा। उन्होंने

सोचा कि यदि कई राष्ट्रों में कोरिया की संरक्षकता का भार बाँट दिया जाय तो स्यात् वह बच जाय। चीन के अधीन होने से अभी तक कोरिया किसी परराष्ट्र से किसी प्रकार की पृथक् सन्धि नहीं कर सकता था। पर सं० १९३९ [सन् १८८२] में लि के समझाने से चीन सर्कार ने कोरिया को स्वतन्त्र व्यापारी सन्धि करने का अधिकार दे दिया। इस अनुज्ञा के अनुसार इंगलैण्ड, जर्म्मनी और अमेरिका से उसी साल संधियाँ हुईं। लि को अनुमान यह था कि यदि कोरिया पर कभी कोई आपत्ति आवेगी तो यह तीनों राष्ट्र उसका पक्ष लेंगे।

कोरिया के लोग जापान से स्वभावतः असन्तुष्ट थे। इन सन्धियों के पीछे उनका साहस भी कुछ बढ़ गया। जापान के विरोधियों में कोरिया के महाराज के पिता लि शिह यिंग प्रमुख थे। महाराज के अल्पवयस्क होने के कारण यही राज का प्रबन्ध करते थे। इनके उभारने से लोगों ने जापानी राजदूतों पर आक्रमण किया और उनके निवासस्थान में आग लगा दी। जापानी लड़ते भिड़ते चेमल्पो बन्दर पहुंचे और वहां से जापान चले गये।

इस पर जापान ने एक सेना कोरिया भेजी। इधर लि ने अपने एक विश्वासपात्र माचिएन चुंग को भेजा। किसी तरह दोनों पक्षों में समझौता हो गया और ५००,००० [जिसमें से पीछे ४००,००० छोड़ दिया गया] डॉलर दण्ड देकर कोरिया के प्राण बचे। लि शिह यिंग कैद करके चीन भेज दिया गया।

दो वर्ष पीछे फिर झगड़ा खड़ा हुआ। लि शिह यिंग चीन से छूट कर फिर कोरिया आ गया था। उसने आते ही फिर जापान के विरोधियों का नेतृत्व लिया। जापानियों को फिर पहिले की भाँति भागना पड़ा और फिर एक चीनी और एक जापानी सेना कोरिया पहुंची। दोनों दल अपने को कोरिया का संरक्षक कहते थे। अन्त में किसी २ भाँति संधि हो गयी। उसकी मुख्य धाराओं का अंग्रेज़ी रूप यह है।

"The Said respective Powers mutually agree to invite the king of Korea to instruct and drill a Sufficient force that she may herself assure her public security and to invite him to engage into his service an officer or officers from amongst those of a third Power who shall be entrusted with the instruction of the said force.

In case of any disturbance of a grave nature occurriing in Corea, which necessitates the respective countries or either of them to send troops to Korea, it is hereby understood that they shall give, each to the other, previous notice in writing of their intention so to do and that after the matter is settled, they shall withdraw their troops and not further station them there."

"उक्त दोनों राष्ट्र (अर्थात् चीन और जापान) आपस में यह निश्चय करते हैं कि कोरिया के महाराज से यह कहा जाय कि वह एक पर्य्याप्त सेना को क़वायद कराकर सुशिक्षित बनावें जिससे कि कोरिया अपनी रक्षा का स्वयं प्रबन्ध कर सके और उनसे यह भी कहा जाय कि इस सेना के शिक्षण के लिये किसी तृतीय (अर्थात् चीन जापान से भिन्न) राष्ट्र के एक या अधिक आफिसर नौकर रक्खें। यदि कोरिया में कोई बड़ी अशान्ति फैले जिसके कारण कि एक या दोनों राष्ट्रों को कोरिया में सेना भेजने की आवश्यकता प्रतीत हो, तो वह ऐसा करने के पहिले एक दूसरे को लिख कर सूचना दे देंगे और काम पूरा हो जाने पर अपनी सेना वहाँ से हटा लेंगे।"

इन शब्दों पर विचार करने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि अब

कोरिया पर चीन का एक मात्र अधिकार नहीं रहा वरन् जापान भी उस का भागी हो गया।

इस के पीछे लगभग ८ वर्ष तक शान्ति रही पर यह शान्ति केवल दिखावे मात्र की थी। भीतर २ आग जल रही थी। जापानी चाहते थे कि कोरिया के राज प्रबन्ध में कुछ ऐसे परिवर्तन हो जायँ जिनसे वह जापान के प्रभाव क्षेत्र में पूर्णतया आ जाय। चीनी और कोरियावासी इसका विरोध करते थे।

यह विरोध तो फैल रहा ही था। किसी कारण से सं० १९५१ (सन् १८९४) में चीन ने कुछ सिपाही कोरिया भेजे, यह संधि के विरुद्ध बात थी क्योंकि जापान को पहिले सूचना नहीं दी गयी थी। जापान इस बात पर स्वभावतः रुष्ट हुआ। परिणाम यह हुआ कि चीन जापान में कुछ युद्ध छिड़ गया।

यह युद्ध चीन के लिये अत्यन्त हानिकारक और जापान के लिये अत्यन्त लाभ दायक निकला। सारे जगत् में जापान की प्रतिष्ठा फैल गयी और चीन का गौरव गिर गया। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। जापानी तो दत्तचित्त होकर उन्नति कर रहे थे और चीनी सो रहे थे। ऐसी दशा में होता ही क्या।

२५ जुलाई और १७ सितम्बर के बीच में चीन को असान और पिङ्गयाङ्ग की स्थल और यालू की जल-युद्ध में हार खानी पड़ी। २१ नवम्बर को पोर्ट आर्थरका क़िला जो बड़ा दृढ़ माना जाता था जापानियों के हाथ में चला गया। चीन सर्कार ने इन बातों के लिये लि को दोषी ठहराया और उनका बहुत कुछ अपमान किया गया, पर जापानियों की बढ़ती देख कर संधि करने की आवश्यकता शीघ्र ही प्रतीत होने लगी।

चीन सर्कार ने अपनी ओर से मिस्टर डेट्रिंग नामक एक सज्जन को भेजा, पर उनको पूर्ण अधिकार न थे इसलिये जापानियों ने उनको लौटा दिया। नियम यह है कि जब दो राष्ट्रों में सन्धि होती है तो दोनों

के प्रतिनिधियों को पूर्ण अधिकार रहता है कि वह जिन शर्तों पर चाहें सन्धि करें। यह अधिकार चीन सर्कार ने अपने प्रतिनिधि को दिया नहीं था। फिर दो चीनी भेजे गये। पर उनके अधिकार भी अपूर्ण थे इस लिये वह भी लौटाये गये। अन्त में लि भेजे गये और १७ अप्रैल १८९५ (सं० १९५२) को संधि हो गयी, इसके अनुसार कोरिया पर से चीन का आधिपत्य उठ गया। फ़ॉरमोसा और पेस्केडोर टापू और लियाओतुंग प्रायद्वीप जापान को मिले और चीन को २००,०००,००० तेल का अर्थ-दण्ड देना पड़ा।

चीन लौट कर लि ने फ्रांस, जर्मनी और रूसको उभारा। इसका परिणाम यह हुआ कि जापान को लियाओतुंग प्रायद्वीप लौटा देना पड़ा।

अभी तक जितनी बातें लिखी गयी हैं उनसे जापान की कोई बड़ी नीचता नहीं टपकती। उसके उद्देश्य चाहे कैसे रहे हों, अन्य महत्वकांक्षी देशों के उद्देश्यों से बुरे न थे। लड़ाई भी उसने जब २ की, दूसरों के छेड़ने पर ही की। यह सब सत्य है, पर इसका कारण है। जापान को चीन का डर था। इसके साथ ही वह संसार के सामने चीन और कोरिया को ही दोषी ठहराना चाहता था, इसीलिये चुपके २ ऐसी चालें चलता था जिनसे कि कुढ़ कर चीनी या कोरिया वाले कुछ उपद्रव कर बैठें और उसको लड़ने का अवसर मिले। पर इस युद्ध के पीछे यह बातें जाती रहीं। चीन का डर रहा ही नहीं, जापान खूब खुल खेला। आगे जिन घटनाओं का उल्लेख है उनसे उसकी निन्दनीय तृष्णा का परिचय मिलेगा।

जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं इस संधि की (जिसको शिमोनोसे-की संधि कहते हैं) एक धारा के अनुसार कोरिया पर से चीन का सारा अधिपत्य उठ गया और चीन ने कोरिया को स्वतंत्र स्वीकार कर लिया। अब देखिये कि कोरिया को अपनी इस नयी स्वतंत्रता का क्या फल मिला।

कोरिया के महाराज और महारानी दोनों ही जापान के विरुद्ध थे।

इनमें महारानी तो जापान से बहुत ही बुरा मानती थीं। संधि के थोड़े ही दिन पीछे (८ अक्तूबर १८९५) को कुछ जापानी सिपाही महल में घुस गये और उन्होंने महारानी को मार डाला। जैसे इस विषय की जाँच की गयी तो यह सिद्ध हो गया कि इन लोगों ने जापानी राजदूत वाइकौएट म्योइरा के कहने से ऐसा काम किया, पर जापान सर्कार ने म्योइरा को किसी प्रकार का दण्ड देना तो दूर रहा उल्टे उनकी पदवृद्धि की।

जो लोग जापानियों की वीरता और उदाराशयता की बड़ी प्रशंसा करते हैं उनको यह घटना स्मरण रखना चाहिये।

एक कण्टक तो दूर हो ही गया, स्वयं महाराज दूसरे कण्टक थे। वह क़ैद कर लिये गये। पर चार महीने के पीछे निकल भागे और रूसी राजदूत के निवास स्थान में शरण के लिये गये। वहाँ से उन्होंने एक घोषणा द्वारा महारानी के हत्यारों के दोष को प्रकट किया।

९ मार्च को रूस जापान में एक समझौता हो गया जिसके द्वारा कोरिया में तार का प्रबन्ध जापान को मिला और रूस जापान दोनों ने कोरिया के शासन, सेना, व्यय, आदि में सुधार कराने की इच्छा प्रकट की। जब इस बात की सूचना कोरिया को दी गयी तो उसके परराष्ट्र मंत्री (जो मंत्री अन्य राष्ट्रों से पत्र व्यवहारादि करता है) ने स्पष्ट लिखा कि यह बात आप लोगों ने बिना कोरिया से पूछे निश्चित कर ली है अतः हम इनको मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। पर दुर्बल की धमकियों से होता ही क्या है। उसके थोड़े ही दिनों पीछे कोरिया की इच्छा न होते हुए भी एक जापानी कम्पनी से ३० लाख यन ऋण लेना पड़ा।

फिर सात वर्ष तक, अर्थात् सं० १९६७ (सन् १९०४) तक कोई महत्त्व की बात नहीं हुई। यह साल कोरिया के लिये अत्यन्त दुःखप्रद हुआ, क्योंकि इसी साल उसके स्वतंत्र जीवन का अन्त हो गया।

१० फर्वरी १९०४ को जिस आज्ञा पत्र द्वारा जापान के सम्राट् ने रूस से युद्ध छेड़ा उसमें स्पष्टतया लिखा था "The integrity of

Korea is a matter of grave concern to this Empire" अर्थात् "कोरिया के स्वातंत्र्य का इस (अर्थात् जापानी) साम्राज्य को बहुत ध्यान है" । २३ फर्वरी को जापानी गवर्न्मेंएट ने लिखा "The Imperial Government of Japan definitley guarantees the independence and territorial integrity of the Korean Empire" अर्थात् "कोरियन साम्राज्य के स्वातंत्र्य और अखण्डित भूपतित्व के लिये जापानी साम्राज्य स्पष्ट वचन देता है"

इसके चार महीने पीछे, अर्थात् जून में, कोरिया का गला घोंटने का एक प्रबन्ध किया गया । मिस्टर नागामोरि नामक एक जापानी सज्जन थे। कोरिया में जितनी परती भूमि थी (वह भूमि जिसमें खेती नहीं होती) उस सबका उनको ५० वर्ष के लिये पट्टा लिखवा दिया गया । उनको यह अधिकार दे दिया गया कि ५० वर्ष तक इस भूमि से चाहे जैसे लाभ उठावें और यदि ५० वर्ष के पीछे कोरिया उनके नाम फिर पट्टा न लिखना चाहे तो इस ५० वर्ष में उनका जो कुछ रुपया लगा हो वह सब ५ रुपये सैकड़े ब्याज के साथ उनको दिया जाय ।

इसके दो महीने पीछे, अर्थात् अगस्त में कोरिया के सद्यःप्राप्त स्वातंत्र्य ने एक नया रूप दिखलाया । अभी तक अन्य स्वतंत्र देशों की भाँति कोरिया के प्रतिनिधि या राजदूत योरप और अमेरिका के स्वतंत्र राष्ट्रों में रहते थे और उन राष्ट्रों के प्रतिनिधि कोरिया में रहते थे । अब जापान ने कोरिया से कहा कि वह सब बाहरी राजदूतों को लौटा दे और अपने राजदूतों को बुला ले, क्योंकि जापान उसका संरक्षक बन कर उसका भी सब काम सँभाल लेगा । यह भी आज्ञा हुई कि कोरिया की सेना २०,००० से ७,००० कर दी जाय ।

इन बातों से स्पष्ट हो गया कि जापान कोरिया को हस्तगत करना चाहता था । घबराकर महाराज ने एक दूत अमेरिका भेजा, क्योंकि उनका

अनुमान था कि ऐसे अवसर पर अमेरिका ही दुर्बल जातियों का प
लेगा। परन्तु "दैवो दुर्बल घातकः"—परिणाम कुछ न हुआ—उलटे स
से पहिले अमेरिका ने ही जापान के कोरिया सम्बन्धी अधिकारों
स्वीकार किया।

जब जापान को पता लगा कि कोरियावाले अपने बचाव का प्रय
कर रहे हैं तो उसने मार्किस ईटो को विशेष दूत बना कर भेजा, वह १
नवम्बर को महाराज से मिले। उन्होंने जो २ बातें जापान की ओर
कहीं उनको सुनकर महाराज ने कहा "मैं मर जाऊँगा पर इन बातों
स्वीकार न करूँगा"। कोरिया का मंत्रिमण्डल भी जापान की शर्तों
विरोधी था; पर वह कर ही क्या सकता था। किसी को रुपये की लाल
दी गयी, किसी को धमकी दी गयी, कोई क़ैद कर लिया गया
अन्त में सिवाय प्रधान-मंत्री और पर-राष्ट्र-मंत्री के और सब ने अप
स्वीकृति दे दी और एक संधि पत्र लिखा गया जिसके अनुसार कोरि
जापान की संरक्षकता में आ गया और एक जापानी रेज़िडेण्ट—जनर
नियुक्त हुआ जिसको कोरिया के शासन के विषय में पूर्ण अधिकार दे दिये ग

जब प्रजा को इस बात की सूचना मिली तो सन्नाटा छा गया। सह
मनुष्यों के हस्ताक्षर से एक अर्ज़ी महाराज के पास भेजी गयी कि जाप
की शर्तें न मानी जायँ। जनरल राजकुमार मिन यांगव्हान ने योरोप
राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को लिखा। लाखों मनुष्य महल के सामने घुटने
कर बैठ गये, महल के भीतर मंत्री और राजकर्म्मचारी महाराज
सामने घुटने टेक कर बैठे रहे। यह अवस्था तीन दिन तक रही। ती
दिन जापानियों ने सबको बलात् हटा दिया और २६ नवम्बर को म
राज के नाम से प्रजा की अर्ज़ी अस्वीकृत की गयी।

३० तारीख़ को राजकुमार जनरल व्हान ने आत्महत्या कर
वह कोरियन प्रजा के नाम एक पत्र छोड़ गये थे। उसका अँगरेज़ी
इस प्रकार है:—

"Through my inability in the Service of the Empire the present threatening state of Affairs has resulted. I am killing myself; my objects in doing this being to demonstrate my sense of gratitute to the Emperor and to allay in part the just resentment of my twenty million compatriots.

My death may have no immediate result and after my death nothing need he said about me, but I am sure that under the new state of Affairs, trouble will destroy our nation and the people of our land. The foreign ministers must have known what Japan proposed to do. I hope that the foreign ministers will make known to their Governments and to their people the condition of our Empire and I hope that some measure of justice may presently be meted to my unhappy country.

It must not be thought that our people are not patriotic. We are. If the foreign ministers can do anything to restore freedom and independence to the people of Korea, I shall send them my grateful thanks from heaven."

"मैं देश की सेवा न कर सका, इसी लिये यह भयंकर अवस्था उपस्थित हुई। मैं आत्महत्या कर रहा हूँ। मैं ऐसा करके महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता दिखलाना चाहता हूँ और अपने दो करोड़ देशवासियों के

न्याय क्रोध को कुछ शान्त करना चाहता हूँ।"

मेरी मृत्यु का तत्काल स्यात् कुछ भी फल न होगा और न मेरी मृत्यु के पीछे मेरे विषय में कुछ कहने सुनने की आवश्यकता है पर मुझे विश्वास है कि आगामी अवस्था में, नाना प्रकार के कष्ट हमारी जाति और हमारे देश के लोगों को नष्ट कर देंगे।

परराष्ट्रों के मंत्रियों (अर्थात् योरोप अमेरिका आदि के राजदूतों) को जापान का उद्देश्य निःसन्देह ज्ञात रहा होगा। मुझे आशा है कि वह लोग अपने राष्ट्रों और अपनी प्रजाओं को हमारे राज्य की दशा बतलावेंगे और मेरे अभागे देश के साथ कुछ न्याय किया जायगा।

यह नहीं समझना चाहिये कि हम लोग स्वदेश प्रेमी नहीं हैं। हम हैं। यदि परराष्ट्रों के मंत्री कोरिया की पुनः स्वातंत्र्यप्राप्ति के लिये कुछ प्रयत्न करेंगे तो मैं उनको स्वर्ग से धन्यवाद दूंगा।"

यह एक सन्तप्त देशभक्त हृदय का उद्गार है पर इससे होना क्या था। किसी ने कुछ भी न सुना, मानों सारे राष्ट्रों को साँप सूँघ गया था।

दिसम्बर को कोरिया के परराष्ट्रमंत्री पाक चे सुन ने आत्महत्या करनी चाही पर उसके प्राण बच गये और कुछ दिन अस्पताल में रहकर अच्छा हो गया।

महाराज बिचारे क़ैद तो थे ही, नाम को अब भी राजा थे। किसी प्रकार प्रसिद्ध सम्वाद-दाता मि० डग्लस स्टोरी द्वारा उन्होंने २९ जनवरी १९०६ को एक पत्र प्रकाशित किया, जिसके शब्द यह हैः—

I. H. M. the Emperor of Korea did not sign or agree to the Treaty signed by Mr. Hayashi and Pak Che Sun on Nov. 17, 1905.

II. His Majesty objects to the details of the Treaty as published through the tongues of Japan.

III. His Majesty has proclaimed the sovereignty of Korea and denies that he has by any act made that sovereignity over to any foreign power.

IV. Under the Treaty as published by Japan, the only terms referred to, concern the internal affairs with Foreign Powers. Japan's assumption of the control of Korean Internal Affairs never has been authorized by H. M. the Emperor of Korea.

V. His Majesty never consented to the appointment of a Resident general from Japan; neither has be conceived the possibility of the appointment of a Japanese who should exercise Imperial powers in Korea.

VI. His Majesty the Emperor of Korea invites the great Powers to exercise a joint protectorate over Korea for a period not exceeing five years with respect to the control of Korean foreign affairs.

१. "जिस सन्धि पर १७ नवम्बर १६०५ को मि० हयाशी (जापानी प्रतिनिधि) और पाक चे सुन (कोरियन परराष्ट्रमंत्री) ने हस्ताक्षर किया उस पर न तो कोरिया के सम्राट् ने हस्ताक्षर किया, न वह उस से सहमत हैं।

२, जापान द्वारा सन्धि का जो व्योरा प्रकाशित हुआ है उससे वह सहमत नहीं हैं।

३, सम्राट ने कोरिया के स्वाम्य (स्वातंत्र्य) को घोषित किया है और उन्होंने वह स्वाम्य किसी अन्य राष्ट्र के हाथ में नहीं दे दिया है।

४, जापान ने जो सन्धि प्रकाशित की है उस में (भी) कोरिया के पर-राष्ट्र सम्बन्धी विषयों का (ही) कथन है (तात्पर्य्य यह कि कोरिया के समस्त परराष्ट्र सम्बन्ध जापान के अधीन रहेंगे) सम्राट् ने जापान को कोरिया के भीतरी शासन में हस्तक्षेप करने का कभी अधिकार नहीं दिया है।

५, सम्राट् ने जापानी रेज़िडेण्ट-जनरल की नियुक्ति की कभी स्वीकृति नहीं दी; उन्होने किसी ऐसे जापानी की नियुक्ति की सम्भावना की भी कल्पना नहीं की जो कोरिया में आधिपत्य (या साम्राज्य के अधिकार) रखता हो।

६, सम्राट् पृथ्वी के बड़े राष्ट्रों से प्रार्थना करते हैं कि वह मिल कर बाह्यविषयों में अधिक से अधिक ५ वर्ष के लिये कोरिया के संरक्षक बन जायँ"।

इस कातर आर्त्तनाद का रत्ती भर भी प्रभाव न पड़ा। जापान ने कह दिया कि यह बातें कोरिया के महाराज की कही हुई हैं ही नहीं।

हाँ एक परिणाम हुआ। अभी तक तो सम्राट् बाहर भी निकलने पाते थे पर अब वह महल में ही क़ैद कर दिये गये और महल पर जापानियों का पहरा बैठा दिया गया। कोरियन राजकर्म्मचारी निकाल दिये गये और उनके स्थान में जापानी रक्खे गये। महाराज को किसी यूरोपियन, अमेरिकन या कोरियन से मिलने की मनाही हो गयी। बहुत सी भूमि प्रजा से इस बहाने छीन ली गयी कि उसकी सैनिक कामोंके लिये आवश्यकता है और फिर जापानियों को दे दी गयी। मि० ऐंङ्गस हेमिल्टन अपनी पुस्तक 'प्राब्लेम्स आव दि मिडिल ईस्ट' (Angus Hamilton, Problems of the Middle East.) में लिखते है " In this way no less than 1000 villages were dis-possessed.

amid scenes in which pillage, rape and murder were prominent. Private rights in the mineral, agricultural and timber lands of the kingdom were treated with equal violence and neither notice nor compensation was given, while monopolies were created over the miner industries of the people." "इस प्रकार एक सहस्र (१०००) गाँव बेदख़ल कर दिये गये और बेदख़लीके साथ मनमानी लूट हुई। लोग मार डाले गये और स्त्रियों का सतीत्व भ्रष्ट किया गया। राज्य के जिन प्रान्तों में खनिज पदार्थ मिलते हैं, खेती अधिक होती है या लकड़ी मिलती है उनमें प्रजा के स्वत्वों के साथ इसी प्रकार बलात्कार किया गया। न तो सूचना दी गयी न छीन लेने पर कुछ रुपया दिया गया। प्रजा के छोटे २ व्यापारों पर एकाधिकार स्थापित कर दिया गया।" *

प्रजा इन अत्याचारों से घबरा उठी। उन दिनों कोरिया पर जापान का १ करोड़ तीस लाख यन का ऋण था। लोगोंने समझा कि स्यात् इस रुपये के देने से प्राण बच जायँ; इस लिये आपस में चन्दा करना आरम्भ किया। पर यह उनकी भूल थी। जापान की समुन्दर-सोख प्यास इस बूँद से कहाँ तृप्त होने वाली थी।

महाराज ने भी एक अन्तिम प्रयत्न किया। उन्होंने अपने पितृव्य राजकुमार यांग-ई-यि को हेग भेजा। हेग हालैण्ड की राजधानी है। यहीं योरप की अन्तर्जातीय सभा बैठ कर सारी पृथ्वी के जटिल राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करती थी। महाराजने सोचा कि इस सभा के सामने पुकार करने से कोई तो सुनेगा, पर कुछ भी न हुआ। हाँ, जब जापान

* एकाधिकार इसे कहते हैं कि किसी एकही व्यक्ति को उस व्यापार को करने का पूर्ण अधिकार मिल जाय और दूसरा कोई उसे न कर सके।

को यह सूचना मिली तो उसने महाराज को यह आज्ञा दी कि वह सिंहासन से उतर जायँ और जापान चलकर जापान नरेश से स्वयं क्षमा माँगे। १७ नवम्बर १९०५ को संधि पर अपने हाथ से हस्ताक्षर करें और राजकुमार यांग को कोरिया बुलाकर दण्ड दिया जाय।

महाराज ने यह सब तो कुछ किया नहीं पर २० जूलाई को युवराज को गद्दी देकर आप अलग हो गये।

१ अगस्त को इस भीषण नाटक का अन्तिम दृश्य खेला गया। उस दिन कोरियन सेना तोड़ने का प्रबन्ध हुआ। एक ओर कोरियन सिपाही खड़े किये गये, और दूसरी ओर जापानी सिपाही थे। पहिले आफ़िसरों की तलवारें ले ली गयीं, फिर सिपाहियों के शस्त्र ले लिये गये। इतने ही में प्रधान कोरियन आफ़िसर ने अपने को गोली मारली। इसी पर सिपाहियों को जोश आ गया और उन्होंने अपने २ शस्त्र फिर उठा लिये। पहिले तो जापानियों की कुछ क्षति हुई पर विचारे कोरियन करही क्या सकते थे। न उनके पास वैसे शस्त्र थे, न तोपखाना था, न शिक्षा थी। थोड़ी ही देर में वह छावनी से गलियों की ओर हटे और फिर घरोंमें हो कर लड़ने लगे। उस समय जैसा कि मि० हेमिल्टन कहते हैं began a carnival of massacre of which the world to-day has hardly heard" ऐसा हत्याकाण्ड मचा जिसका जगत ने समाचार ही नहीं पाया। पाता कहाँ से, समाचारोंकी कुञ्जी तो जापान के हाथ में थी। लोगों के घर लूट गये और मनमाना अत्याचार हुआ। लोगों के हाथ पैर तोड़ दिये जाते और फिर वह रस्सी बाँध कर सड़कों में खींचे जाते। उन्मत्त जापानी उनकी दुर्दशा पर हँसते और उनको ठोकरें मारते। यह दशा केवल स्यूल (कोरिया की राजधानी) ही में नहीं वरन् चांग-जू वानजू, प्यांगयांग, चूचांग आदि कई नगरों में हुई और सभी जगहों में यही बातें हुई। प्रजा के साथ जो २ अत्याचार किये गये उनके विषय में मि० हेमिल्टन कहते हैं, there were scenes

encelling in their complete shamelessness the atrocities which accompanied the murder of queen Min." ऐसी २ बातें हुई जो महारानी मिन की हत्या के समय जो अत्याचार किये गये थे उन से भी बढ़कर निर्लज्ज थीं ।

बस, इसके साथ ही कोरिया के रहे सहे स्वतंत्र जीवन की समाप्ति हो गयी। अब वह जापान का एक प्रान्त है और एक गवर्नर-जनरल उस पर शासन करता है।

यह दुःखमय कहानी जिस ब्योरे और विस्तार के साथ लिखी गयी है, सम्भव है कि उससे कुछ पाठक उकता गये हों, पर मेरी समझ में इस विषय को और संक्षिप्त करना अनुचित होता। जापान के नाम ने जनता, विशेषतः भारतीय जनता, की आँखों पर जो अज्ञान पट डाल रक्खा है उसका दूर करना आवश्यक है। हमको चाहिये कि अपने मित्रों और शत्रुओं दोनों को पहिचान लें।

चीन पर जापान की इस घृणित लोभमयी नीति का गम्भीर प्रभाव पड़ा। लोगों को जापान से जो कुछ आशा थी वह ठण्डी हो गयी। उलटे निराशा ने घेर लिया। जापान निकट था, उसके पास बल था, उसके सहायक यूरोप में भी थे, ऐसा मदान्ध लोभी देश जो देखते २ ही कोरिया को चट कर गया क्या कुछ नहीं कर सकता। चीनियों का हृदय भय से काँप उठा।

उधर चीन की मन्चू सर्कार थी, जिसे सिवाय सोने के और कुछ आता ही न था। चीन को जापान ने पीट लिया पर मन्चू सर्कार की नींद न टूटी। चीन की अप्रतिष्ठा उसे जागृत न कर सकी। चीन का पुराना भृत्य (या आश्रित) कोरिया नष्ट हो गया पर मन्चू सर्कार हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। जापानियों ने चीन के इतने पास अपने पाँव जमा लिये पर मन्चू सर्कार को क्षोभ न हुआ। चीनी प्रजा के हृदय में भय के साथ लज्जा घृणा और क्रोध ने भी घर किया।

उन्होंने देख लिया कि ऐसी सर्कार प्रजा की हानि करने में ही समर्थ है पर प्रजा की मान रक्षा और स्वत्व रक्षा करने की न तो उसकी इच्छा है और न शक्ति, अतः अपना काम अपने हाथों ही करना होगा। इस विचार ने चीनी जनता में आशा, उत्साह और कर्म्मपरायता का सञ्चार किया।

(ग) चीन और परराष्ट्र ।

ऊपर के दो खण्डों से ही इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि चीन का परराष्ट्रों के साथ, या यों कहिये कि परराष्ट्रों का चीन के साथ कैसा व्यवहार रहा है। परन्तु इस अध्याय में इस विषय का किञ्चित सविस्तार वर्णन करना आवश्यक है, इस लिये हम पर राष्ट्रों को पृथक् पृथक् लेंगे।

सब से पहिले सं० १५७४ (सन् १५१७) में पुर्तगाल वाले चीन गये थे। उनके पीछे सन् १५७६ में स्पेन वालों और सन् १५६८ में डच लोगों से चीन वालों का सामना हुआ। आरम्भ में तो इनसे बहुत लड़ाई झगड़े रहे पर पीछे से इनका प्रभाव बहुत कम हो गया क्योंकि इनकी शक्ति ही कम हो गई। अतः इनका वर्णन विस्तार के साथ करना अनावश्यक है।

इँगलैण्ड ।

डच लोगों के कुछ ही पीछे अँग्रेज़ चीन पहुँचे, पर आरम्भ में उनकी परिस्थिति में कोई विशिष्ट बात न थी। चीनी उनको डच समझते थे। सन् १६८४ में उन को कैण्टन में कोठी बनाने और व्यापार करने का स्वत्व मिला। परन्तु इसके पीछे लगभग १५० वर्ष तक कोई महत्व की बात नहीं हुई।

इस बीच में अफ़ीम का व्यापार बढ़ता जाता था। सन् १६८४ तक २०० पेटी से अधिक अफ़ीम चीन नहीं जाती थी। पर १८२० में पेटियों की संख्या ४००० तक पहुँच गयी। बात यह थी कि पहिले तो अफ़ीम औषधि के नाम से जाती थी। पीछे से लोगों को इसके खाने का चसका लग गया। उधर चीन में भी इसकी खुल कर खेती होने लगी। चीन सर्कार इस बात से बहुत घबरायी। रुपया भी देश से जाता था और प्रजा का

स्वास्थ्य चौपट होता जाता था। यह व्यापार अँग्रेजों के ही हाथ में था क्योंकि भारत में अफ़ीम उत्पन्न होती है इसलिये अँग्रेजों से चीन सम्राट् रुष्ट थे।

१८२१ में अँग्रेजों के अफ़ीम के जहाज़ कैंएटन बन्दर से निकाल दिये गये और १८३८ में अफ़ीम के विरुद्ध कई कड़े नियम बनाये गये। इन नियमों का तात्पर्य्य यह था कि प्रजा का अफ़ीम खाना बन्द हो और बाहर से अफ़ीम का आना बन्द हो। यह नियम अँग्रेजों को स्वभावतः बुरे लगे और एक छोटी सी लड़ाई छिड़ गयी, जिसको ओपियम-वार (अफ़ीम की लड़ाई) कहते हैं। उसका फल यह हुआ कि अँग्रेजों का अफ़ीम बेचने का अधिकार बना रहा। उनको हाङ्काङ्ग का द्वीप मिल गया और विदेशियों को शङ्घाई, निङ्गपो, अमॉय और फूचाउ में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो गया। यह घटना १८४० की है।

१८५८ के लगभग फिर झगड़ा हुआ। चीनी अँग्रेजों को कैंएटन नगर के भीतर नहीं रहने देते थे, इस वार फ्रांस भी अँग्रेजों के साथ था। अब की बार भी चीन को नीचा देखना पड़ा। जब संधि हुई तो न्यूचवांग, चेफू, ताइवान आदि कई नये स्थानों में व्यापार करने का विदेशियों को अधिकार मिल गया और उनके राजदूत पेकिंग में रहने लगे।

सन् १८७५ में फिर बखेड़ा खड़ा हुआ। कर्नेल ब्राउन कुछ मनुष्यों के साथ भारत से चीन भेजे गये थे। चीन सर्कार ने उनको चीन राज्य में यात्रा करने की आज्ञा भी दे दी थी। रास्ते में उनके एक साथी मि० मार्गरी को किसी ने मार डाला। चीन सर्कार का कथन था कि मारने वाले एक जंगली जाति के मनुष्य थे। ११ जंगलियों को फाँसी भी दे दी गयी पर अंग्रेजों को इतने से शान्ति न हुई। बहुत कुछ बाद विवाद हुआ। यहाँ तक कि लड़ाई होने की सम्भावना प्रतीत होने लगी। पर किसी प्रकार बात शान्त हो गयी। एक संधि-पत्र लिखा गया जिसके द्वारा वेन्चाउ आदि कई नये नगर अँग्रेजी व्यापार के लिये खुल गये और चीन से कुछ लोग क्षमा माँगने के लिये इंगलैण्ड भेजे गये।

१८८५ में इंगलैंड ने उत्तरी वर्मा अपने राज्य में मिला लिया। इस पर चीन ने आक्षेप किया क्योंकि वर्मा के महाराज चीन को कर दिया करते थे। उधर अँग्रेज़ लोग व्यापार के लिये तिब्वत में प्रवेश करना चाहते थे। अन्त में चीन को प्रसन्न करने के लिये अँग्रेज़ों ने तिब्वत का तो नाम लेना छोड़ दिया और उधर चीन भी वर्मा के विषय में चुप हो रहा। पर यह निश्चय हुआ कि जैसा पहिले होता था अब भी प्रति दसवें वर्ष बर्मा से कुछ भेंट चीन जाया करे। उस समय अँग्रेजों ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया यद्यपि भेंट भेजने का कभी अवसर ही न आया।

१८८६ में अंग्रेज़ों नें पोर्ट हैमिल्टन दबा लिया। जब चीन ने विरोध किया तो यह उत्तर दिया गया कि हमको यह डर है कि कहीं रूस कोरिया को न दबा ले, इसी लिये हम अपने रक्षार्थ ऐसा करते हैं। वाह रे न्याय! इसके अनुसार यदि कोई चोर पकड़ा जाय तो वह कह सकता है कि मुझे आशंका थी कि इस घर में एक दूसरा चोर घुसने वाला है इस लिये अपनी रक्षार्थ मैं ही पहिले घुस गया। अस्तु, चीन के दबाने से रूस ने कहा कि मैं कोरिया को नहीं दबाना चाहता। तब अंग्रेजों ने पोर्ट हैमिल्टन छोड़ा।

चीन और इंगलैण्ड का वर्मा की सीमा के विषय में बहुत दिनों से विवाद चला आता था। वह १८९७ में निर्णीत हो गया और १८९८ में अंग्रेज़ों को शानतुंग में अपने फौजी जहाजों के खड़े करने के लिये स्थान मिल गया।

१९०१ में बॉक्सर युद्ध में जो कुछ हुआ वह लिखा ही जा चुका है। १९०४ में एक सेना कर्नल यंगहस्बेण्ड के साथ तिब्वत भेजी गयी और जो स्वत्व चीन से शान्तिपूर्वक नहीं मिल सके थे वह शस्त्र द्वारा प्राप्त कर लिये गये।

फ्रांस।

फ्रांस वाले आये तो चीन में बहुत दिनों से थे पर उनको पहिले पहल ऐतिहासिक महत्व उस समय मिला जब सन् १८५८ के युद्ध में उन्होंने

अंग्रेज़ों का साथ दिया। इसके पीछे उन्होंने स्वयं चीन में तो कुछ किया नहीं पर कोचीनचीन, टाङ्किन और अनाम में अपना प्रभाव फैलाते गये। १८७३ में उन्होंने अनाम से एक संधि भी की जिससे वह अनाम के रक्षक हो गये। इसी रक्षकता के बहाने उन्होंने कुछ सेना चीनी सीमा के पास भेजी। यह बात चीन के लिये असन्तोष जनक थी। उसने कहा कि अनाम चीन के अधीन सैकड़ों वर्षों से है अतः उसकी फ्रांस के साथ जो १८७३ में संधि हुई वह नियम विरुद्ध है। भला फ्रांस वाले इस बात को कब मनाने वाले थे। अतः १८८४ में दोनों राष्ट्रों में लड़ाई छिड़ गयी। पहिले तो चीन की हार रही और एक संधि लिखी भी गयी पर किसी कारण से इस पर दोनों पक्ष सहमत न हुए और फिर लड़ाई आरम्भ हुई। इस वार चीनियों का पल्ला भारी रहा। अन्त में इन शर्तों पर मेल हुआ कि चीन फ्रांस वालों को सीमा पर व्यापार करने का अधिकार देदें और फ्रांस इस वात को स्वीकार करले कि चीन ही अनाम का संरक्षक है।

इस लड़ाई के परिणाम से यूरोपियनों की दृष्टि में चीन का गौरव वढ़ गया। पर बुराई की बात यह हुई कि चीनियों को स्वयं मिथ्याभिमान ने घेर लिया और वह अपने को अत्यन्त शक्तिशाली समझने लगे।

इसके पीछे कोई बहुत महत्व की बात नहीं हुई। बॉक्सर युद्ध में फ्रांस सम्मिलित था ही, हां, इतना ही जानना पर्य्याप्त है कि कुछ तो संधियों द्वारा और कुछ योंही वलात् फ्रांस ने चीन के आग्नेय कोण पर अपना प्रभाव अच्छा जमा लिया है और धीरे २ टाङ्किन, अनाम, कम्बोडिया और कोचीनचीन को एक २ करके एक न एक बहाने से निगल गया है।

जर्मनी ।

सन् १७५२ के लगभग जर्मन लोग चीन आगये थे पर १८७० के पहिले उनका कोई विशेष ऐतिहासिक महत्व न था। उस साल फ्रांस को हरा कर उनका बल और अभिमान वढ़ गया था इसी लिये कभी २

उद्दण्डता कर बैठते थे परन्तु प्रायः उन्होंने नीति और दूरदर्शिता से काम लिया। इसी लिये चीनी उनको सीधा समझते थे। इसका फल यह हुआ कि चीनी सेना के शिक्षण के लिये प्रायः जर्मन ही रक्खे जाते थे और जर्मनी से ही शस्त्र और अन्य सैनिक सामग्री मोल ली जाती थी।

परन्तु १८६७ में जर्मनी ने अपना सच्चा रूप दिखलाया। न कोई लड़ाई थी न झगड़ा था। हां, कुछ मारपीट हो गयी थी जिसमें दो एक जर्मन पादरी मारे गये। बस, विना कुछ कहे सुने, जर्मनी ने कियाउ चाउ और उसके आस पास की भूमि यकायक ले ली। इसका परिणाम यह हुआ कि रूस ने पोर्ट आर्थर और ता-लिएन वान, इङ्गलैण्ड ने वइहाइ वाइ और फ्रांस ने क्वाङ्गचाउ वान ले लिया। हां, इन तीनों ने चीन की लज्जा बचाने के लिये, नाम मात्र को ६६ वर्ष का पट्टा लिख दिया। यह कहना अनावश्यक होगा कि पट्टे के लिये कुछ धन नहीं दिया गया।

बॉक्सर युद्ध के समय जर्मनी का जैसा कुछ व्यवहार रहा उसका कथन ऊपर हो ही चुका है।

अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र)

सब से पहिले १७८४ में अमेरिकन लोग चीन आये। उसके कुछ ही दिनों पहिले वह अंग्रेजों से लड़कर स्वतंत्र हुए थे। इस लिये चीन सर्कार उनसे कुछ प्रसन्न सी थी। इसके अतिरिक्त अमेरिका वाले अफ़ीम के व्यापार से पृथक् रहते थे। चीन में उन्होंने कभी पादरी भेजकर या अन्य रीति से अपना प्रभाव नहीं बढ़ाना चाहा। कभी उन्होंने चीन की भूमि नहीं दबाई। इतना ही नहीं, बॉक्सर युद्ध के पीछे अर्थ दण्ड का जो भाग उनको मिला था उसमें से भी उन्होंने कुछ लौटा दिया। इन कारणों से अमेरिका और चीन में कभी विशेष वैमनस्य नहीं हुआ। वैमनस्य का एक कारण कभी २ उत्पन्न हो जाता है। बहुत से चीनी अमेरिका जाते हैं और यह बात अमेरिका के कई राष्ट्रों को पसन्द नहीं है, इसलिये वह इनको रोकने के लिये भाँति २ के प्रयत्न करते हैं। पर

जहां तक पता लगता है प्रधान अमेरिकन सर्कार का इसमें दोष नहीं है ।

रूस ।

यूरोपियन राष्ट्रों में से रूस का चीन से सब से पुराना सम्बन्ध है । किसी समय में रूसी-साम्राज्य के दक्षिण और पूर्व का भाग चीन के अधीन था। इस सम्बन्ध के क्रमशः टूटने पर भी दोनों देशों को एक दूसरे का सन् १३६८ तक [जब कि चीन से मंगोलों का राज्य उठ गया] कुछ २ पता था। पर इस साल के पीछे मंचूराज्य की स्थापना तक एक का दूसरे के इतिहास में कहीं नाम भी नहीं मिलता ।

१६५२ में रूस और चीन में युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों राष्ट्र अमूर नदी के किनारे [यक्स] अल्बाज़िन को लेना चाहते थे । यह लड़ाई १६८९ में समाप्त हुई । रूसियों को अल्बाज़िन छोड़ना पड़ा। बहुत से रूसी पकड़ कर पेकिंग लाये गये और मंचुओं की झण्डे वाली पल्टनों में भरती कर लिये गये ।

उस समय से लेकर अब तक चीन और रूस में दस बारह छोटी बड़ी संधियां हो चुकी हैं । रूस बराबर चीन को उत्तर पूर्व और पश्चिम में दबाना चाहता था। जब १८७० के लगभग चीन की मुसल्मान प्रजा ने विद्रोह कर दिया था, रूस ने चुपके से चीन का इली प्रान्त दबा लिया । पर १८८१ में चीन ने उसे लौटा लिया । चीन का निरन्तर प्रयत्न यही था, और यह प्रयत्न अल्बज़िन वाले झगड़े के समय से हो रहा था, कि रूसी मंचूरिया के पास न फटकने पावें । इसी लिये उसने उस प्रान्त को उजाड़, जनशून्य मरुस्थल सा बना रक्खा था । पर १८८८ से उसने अपनी नीति पलट दी क्योंकि उसको कई अंग्रेज आफिसरों की खोज से पता लगा कि यह प्रान्त अत्यन्त उपजाऊ और खनिज पूर्ण है । फिर तो चीन ने इस को जनपूर्ण और समृद्ध करने का पूर्ण प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया । उसका विचार यह था कि यह प्रान्त इतना सम्पन्न और

सुसंगठित कर दिया जाय कि रूस या कोई अन्य विदेशी इसमें अपने पांव न अड़ा सके। यह उद्देश्य पूरे न होने पाये। जापान से युद्ध के पीछे चीन इतना दुर्बल हो गया कि रूस को अवसर मिल गया। १८९६ में उसने रेलवे सम्बन्धी कई अधिकार चीन सरकार से लिये और १८९७ में जर्मनी का अनुकरण करके पोर्ट आर्थर और तालिएनवान दवा लिया। इन बातों का फल यह हुआ कि यद्यपि नाम को मञ्चूरिया चीन का प्रान्त था, पर उस पर रूस का बहुत बड़ा दबाव था। जब से रूस ने साइबीरिया में होते हुए व्लाडिवॉस्टॉक तक रेलवे खोली तब से यह दबाव और भी बढ़ गया।

जापान।

चीन–जापान के सम्बन्ध का सब से बड़ा अंश तो वह है जो कोरिया विषयक है। इस का कथन पहिले ही हो चुका है। जापान की नीति ने यूरोप वालों को भी पीछे डाल दिया। इस का एक कारण यह है कि जापान से किसी को ऐसी आशा नहीं थी। लोग समझते थे और यह समझना समुचित ही था कि जापान चीन के अभ्युत्थान में सहायक होगा क्योंकि यदि यह दोनों राष्ट्र मिल जायँ तो पृथ्वी में इनके सामने किसी का ठहरना कठिन हो जाय।

१८७४ में फार्मोसा के पास एक जापानी जहाज़ टूट कर डूब गया। जो मल्लाह बच गये उनको फार्मोसा के जंगलियों ने मार डाला। यह कोई नई बात न थी। पर जापान के नये पर निकले थे और वह उनकी परीक्षा करना चाहता था। उसने चीन वालों से लिखा पढ़ी की। चीन ने उत्तर दिया कि ये जंगली एक प्रकार से स्वतन्त्र हैं अतः कुछ नहीं हो सकता। बस, जापान ने अपना एक सेना फॉर्मोसा भेजी। अब चीनियों की आँख खुली। वे डरे कि कहीं जापानी इस द्वीपको दबा न लें क्योंकि जब चीन ने जंगलियों को स्वतंत्र कह दिया तब जापान को अधिकार था कि वह जो चाहे करे। अतः अंग्रेज़ी राजदूत

मि० वेड को मध्यस्थ बनाकर संधि हो गयी और क्षतिपूर्ति के लिये चीन ने ५००,००० तेल (चीनी सिक्का दण्ड दिया।

यह बात चीन के लिये इतनी अपमान जनक समझी गई कि चीन के सर्कारी गज़ट में इसका नाम तक नहीं आया और संधिपत्र में ५००,००० का अर्थदण्ड इन चक्करदार शब्दों में दिखलाया गया:—

"The Chinese Government will at once give the sum of 100,000 taels to compensate the families of the ship wrecked Japanese who were killed. In addition to this, the Chinese Government will not fail to pay a further sum of 400,000 taels on account of the expenses occasioned by the construction of roads and erection of buildings which, when the Japanese troops are withdrawn, the Chinese Governmet will retain for its own use."

"जो जहाज़ी जापानी मारे गये हैं उनके कुटुम्बियोंको चीन सर्कार १००,००० तेल देगी। जापानियों का सड़क और मकान आदि बनवाने में जो व्यय हुआ है उसके लिये भी वह ४००,००० तेल देगी। जब जापानी सेना हट जायगी तो चीन सर्कार इन सड़क आदिकों को अपने काम में लावेगी"। सबसे हँसी की बात तो यह हुई कि दो तीन महीने पीछे कई चीनी जनरलों को इस बात के लिये तरक्की दी गयी कि उन्होंने फार्मोसा में बड़ी वीरता दिखाई थी।

उसी साल जापान ने चीनके मना करने और स्वयं वहाँ के निवासियोंके प्रार्थना करने पर भी लूचू को दबा लिया। बॉक्सर युद्ध में जापान सम्मिलित हुआ ही था।

कोरिया के अतिरिक्त मञ्जूरिया पर भी जापान की बहुत दिनों से दृष्टि थी, पर रूस के मारे उसका वश न चलता था। इसी लिये अवसर

पाकर उसने प्रसिद्ध रूस–जापान युद्ध छेड़ा । युद्ध छेड़ते समय जापान ने यह बात प्रकट की थी कि रूस ने चीन पर अनुचित दवाव डाल कर चीन के कई अंशों पर अनुचित अधिकार प्राप्त कर लिया है । अतः जापान इस लिये लड़ रहा है कि चीन के स्वत्वों के साथ जो अनुचित हस्तक्षेप हुआ है वह पलट दिया जाय । पर जब उसकी जीत हो गयी तो पलटना पलटाना तो दूर रहा, जापान रूस का उत्तराधिकारी वन बैठा और जो अनुचित अधिकार रूस को प्राप्त हो गये थे उनसे स्वयं काम लेने लगा ।

अन्यराष्ट्र ।

योरप के छोटे २ राष्ट्रों में से प्रायः सभी चीन से कुछ न कुछ सम्बन्ध के प्रार्थी थे । डेन्मार्क, बेल्जियम, स्पेन, पुर्तगाल, स्वीज़रलैण्ड, हॉलैण्ड, और आस्ट्रिया का सम्बन्ध तो व्यापारी था। इटली निःसन्देह और ढंग के विचार रखता था । १८९९ में इटली के राजदूत सेञ्ररौंग ने चेहाकियांग तट पर विशेष स्वत्व पाने के लिये चीन पर बहुत कुछ दबाव डाला था पर चीन दृढ़ रहा अतः उनकी कुछ चली नहीं । इसी का बदला इटली ने बॉक्सर युद्ध के समय निकालना चाहा ।

अमेरिका के अन्य राष्ट्रों (अर्थात् संयुक्त राष्ट्र के अतिरिक्त) में से पेरू, ब्रेज़ील, मेक्सिको की चीन के साथ संधियां हैं । इनमें पेरू की संधि कुछ महत्त्व की है । यह १८७५ में हुई । इसके पहिले बहुत से चीनी कुली पेरू जाया करते थे पर उनके साथ बहुत बुरा वर्ताव होता था । इस संधि द्वारा यह निश्चय हुआ कि इन कुलियों के साथ अच्छा वर्ताव हो, शर्तवन्दी की प्रथा वन्द हो जाय और चीनी कुलियों पर चीन सरकार निरीक्षण करे ।

इसके अतिरिक्त सार्विया, रूमानिया आदि कई छोटे राष्ट्र हैं जिना की चीन के साथ कोई संधि तो नहीं है पर यह सब चीन के महत्त्व को इतना मानते थे कि जब इनमें कोई विशेष राजनैतिक परिवर्तन होता तो उसकी सूचना चीन को दे दिया करते थे ।

अब यह अध्याय बहुत लम्बा हो चुका है । इसके खण्डों के देखने से स्पष्ट हो गया होगा कि मञ्चू सरकार कैसा शासन करती थी । जो एक मात्र निर्लज्ज हो उसकी तो बात ही और है पर वस्तुतः चीनी प्रजा मुँह दिखाने योग्य नहीं रह गयी थी । पहिले तो शासन का प्रत्येक अंग इतना बुरा और सदोष था कि प्रजा की उन्नति में पद २ पर बाधा पड़ती और विदेशियों को बीच में बोलने का अवसर मिलता । दूसरे, मञ्चुओं को अभिमान ने इतना मत्त कर रक्खा था कि वह अपने को सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान समझते थे । बैठे बिठाये सारे संसार को लड़ने का निमंत्रण दे दिया । जब लड़ने चले तो जम कर तीन चार महीने भी न ठहर सके—उलटे देश के गले में अपमान के साथ २ एक भारी ऋण का बोझ बाँध दिया । जिस समय चीनी पेकिंग में लिगेशनों की क़िलेबन्दी और विदेशी गारदों को देखते थे [और हैं] । उनका हृदय ग्लानि और क्रोध के मारे भर जाता था [और है] । पेकिंग के उस भाग में सिवाय नौकरों के और कोई चीनी नहीं रह सकता । अपनी ही राजधानी में अपना यह अपमान !

पर राष्ट्रों के विषय में भी चीन सर्कार की नीति कैसी कच्ची और निर्बल थी । जब जिस राष्ट्र ने चाहा चीन का एक भाग दबा लिया । आरम्भ से लेकर रूस जापान युद्ध तक चीन बराबर दबता ही आया । इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, रूस, जापान सभी उससे यथेच्छ पृथक २ या मिल कर खेलते आये, पर चीन सिवाय बन्दर घुड़कियों के और कुछ न कर सका ।

ऐसी बातों से प्रजा की जागृति होनी ही थी । उसका हृदय इन लज्जाजनक दृश्यों को देखते २ पक गया । जो सरकार न तो देश की रक्षा करती है, न प्रजा के मान या स्वत्वकी रक्षा कर सकती है, जो स्वदेश और परदेश में अपनी हँसी कराती है उसकी छत्रच्छाया में रहना व्यर्थ है । उसको शीघ्र निष्कासित करना ही श्रेयस्कर है ।

पञ्चम अध्याय ।

सुषुप्ति की समाप्ति ।

जिन बातों का दिग्दर्शन ऊपर के अध्यायों में हुआ है उनसे यह स्पष्ट ही है कि चीनियों की प्रगाढ़ निद्रा का भंग होना स्वाभाविक था। एक ओर जापान की उन्नति, दूसरी ओर यूरोपियन राष्ट्रों की निर्लज्ज लोलुपता तीसरी ओर मञ्चुओं का दुःशासन—यह सब बातें एक आत्माभिमानी जाति को जगाने के लिये पर्य्याप्त थीं। जो विद्यार्थी जापान आदि से लौटते थे वह सब उन्नति का ही राग अलापते थे। उनको यह दृढ़ विश्वास था कि जिस दिन चीन जाग जायगा उस दिन एशिया में यूरोपीय आधिपत्य का अन्त हो जायगा, जैसा कि एक बार वेनह्सियांग ने सर रावर्ट हार्ट से कहा था "हम लोगों को सोने दो, यदि हम को जगाओगे तो हमारी गति तुमको घबरा देगी।"

चीन उन देशों में से था जिन में राजकर्मचारियों का प्रभाव और अधिकार बहुत बढ़ा चढ़ा होता है। नीचे से ऊपर तक इन्हीं कर्म्मचारियों के हाथ में शासन सूत्र था। यदि किसी एक कर्म्मचारी पर कोई आपत्ति आ पड़े तो सब के सब उसकी सहायता पर खड़े हो जाते। बात यह थी कि दो चार का छोड़ कर सभी लालची, घूँस खाने वाले, प्रजापीड़क थे। यदि इनमें इतना एका न हो तो काम न चले। चोर को चोर की सहायता करनी ही चाहिये।

ऐसी परिस्थिति में प्रजा की जो दशा होती है वह हम से छिपी नहीं है। कोई उसकी सुनता ही नहीं। जो बात किसी छोटे से सरकारी कर्म्मचारी ने कह दी वह पत्थर की लकीर हो गयी। नीचे से ऊपर तक सर्व कर्म्मचारी वही बात कहेंगे। परिणाम यह होता है कि पिसते २ प्रजा भी बड़ी ही

सहनशील हो जाती है। बड़ी २ आपत्तियों को चुपचाप झल लेती है। भीतर २ आग दहकती रहती है पर ऊपर से वही राख का ढेर दीखता है। ठीक यही दशा चीन में थी। अशान्ति थी, क्रोध था, पर ऊपर से कुछ प्रतीत नहीं होता था। प्रजा ने किसी प्रकार के शासन सुधार की पुकार नहीं की; उसकी निद्रा वैसी ही निस्तब्ध थी; सिवाय दो चार नवयुवकों और नवशिक्षितों के कोई राजनैतिक प्रश्नों पर विचार ही नहीं करता था और मञ्चू सरकार अपनी पीठ ठोंक कर अपने लिये साधुवाद देती हुई मोह-गर्त में पड़ी सो रही थी।

ऐसे समय में—सन् १८९८ (सं. १९५५) में—सम्राट कांग्हस् के हृदय में स्वतः सुधार की इच्छा जाग्रत हुई। उन्होंने दूर दर्शिता से काम ले कर देखा कि यों अन्धेर से काम नहीं चल सकता। यदि पृथ्वी पर चीन के गौरव और स्वतंत्र अस्तित्व को बचाना है तो इसके पहिले कि कोई ऐसा भारी धक्का लगे जिससे सँभलना ही कठिन हो जाय स्वयं सुधार करना अच्छा है। इस विचार से उन्होंने उदार विचारों के कई सज्जनों की एक सभा की। इन लोगों में कांग् यु-वाइ प्रधान था। सब की सम्मति लेकर सम्राट ने कई घोषणाएँ निकालीं। यदि इन के अनुसार काम होता तो चीन का कायापलट हो जाता। प्राचीन शिक्षा के स्थान में नवीन पाश्चात्य शिक्षा को प्राधान्य दिया गया। लोगों का उत्साह इतना बढ़ गया कि मन्दिरों से मूर्तियां हटा २ कर पाठशालाएँ खोलीं गयी [परिशिष्ट क]

पर यह दशा अधिक दिन न रहने पायी। पुराने विचार के लोग घबरा गये। उन्होंने देखा कि यदि उन्नति का स्रोत यों ही बहता रहा तो हमारी अनुचित आय मारी जायगी और सारे अवैध अधिकार छिन जायँगे। बस इन लोगों ने राजमाता को जा कर उभाड़ा। वह सहज ही उधर मिल गयीं। इधर सम्राट को युआन-शिह-काई का बड़ा भरोसा था। यु-आन तेंजिंग का सूबेदार था। वह उदार और नवीन विचारों का व्यक्ति

था और अपने सूबे में उसने कई अच्छे सुधार किये थे। पर इस समय, न जाने क्यों, उसने विश्वासघात किया और राजमाता के भतीजे, जंगलू, से सारा भेद कह दिया। भेद हो क्या था, सम्राट की इच्छा थी कि राजमाता कैद कर के कहीं दूर रख दी जायें कि फिर राजकार्य्य में हस्तक्षेप न कर सकें। पर युआन के धोखे ने सब काम बिगाड़ दिया। पुरानों की जीत रही। सम्राट के साथी या तो भाग गये या पकड़ लिये गये। कांग अंग्रेजों की सहायता से हांगकांग भागा। स्वयं सम्राट राजप्रासाद में एक प्रकार के कैदी हो गये। उन पर कड़ा पहरा रहने लगा।

इसके कुछ ही काल पीछे प्रसिद्ध बाक्सर विद्रोह हुआ। उस अवसर पर राजमाता की मूर्खता और उनके सहायकों या मंत्रियों की अदूर दर्शिता से चीन को जो कुछ अपमान सहना पड़ा और क्षति उठानी पड़ी उसका कथन चतुर्थ अध्याय में हो चुका है। जिन लोगों के द्वारा सुधारकों का निष्कासन हुआ था उनको पर्य्याप्त दण्ड मिल गया।

ऐसा प्रतीत हुआ कि राजमाता की भी आंख खुल गयी। उनके कई अन्धे मंत्री तो यूरोपीय राष्ट्रों के परामर्श से दूर कर ही दिये गये थे, अब उन्हों ने युआन को चिहली प्रान्त का प्रान्ताधीश बनाया। इसी प्रान्त में चीन की राजधानी पेकिंग भी है।

यहां आकर युआन ने कई आवश्यक सुधार किये। स्थानीय शासन का एक विभाग नियत किया गया और इसके द्वारा नागरिकों को म्युनिसिपैलिटी के काम की बहुत कुछ शिक्षा दी गयी। बिजली की रोशनी का प्रबन्ध किया गया; जनताके स्वास्थ्यके लिये कई उपयोगी प्रबंध किये गये स्कूल और कालेज खोले गये और एक विश्वविद्यालय की नीव डाली गयी, पुलीस की सुधार हुआ और बहुत से चीनी विद्यार्थी जापान, जर्मनी, इंगलैण्ड आदि देशों को भेजे गये।

इस समय चीन में तीन राजनैतिक दल थे।

१ नवयुवक दल—यह दल मञ्चू राजवंश को निकालकर प्रजातंत्र

किया गया। नयी शिक्षा ही सारे झगड़े की जड़ समझी गयी अतः इस के ही पीछे लोग हाथ धोकर पड़े। कालेजोंमें इसको जो कुछ प्रवन्ध दिया गया था वह हटा लिया गया । प्राचीन विद्या के जन्मदाता काङ्ग-फू-त्सी जो अभी तक चन्द्र सूर्य्य की कोटि में माने जाते थे अब दया पृथ्वी की श्रेणी मे पहुंचाये गये । कई प्रतिष्ठाएँ जो केवल सम्राट के पितरों को दी जाती थीं उनकी आत्मा को दी गयीं । उनके जन्मस्थान चूफू में उनकी शिक्षाओं के अध्ययन के लिये एक विद्यालय खोला गया। यह सब तो हुआ। पर तमाशे की बात तो यह थी कि कांग-फू-त्सी के ७६ वें वंशज, धात्रित्र ड्यूक यन, जो इन कृपाओं के लिये धन्यवाद देने पेकिङ्ग आये थे, स्वयं नवीन शिक्षा के पक्षपाती थे ।

ऐसा प्रतीत हुआ कि सुधारों पर पानी फिर गया। पर काल बली है । वह राजमाताओं और दुष्ट मंत्रियो के रोके नहीं रुकता । जो उसकी गति में बाधा डालना चाहता है वह आपही ठोकर खाकर दूर जा गिरता है। अभी तक तो सुधारों का करना या न करना सम्राट, राजमाता और मंत्रियों के हाथ का खेल सा जान पड़ता था । जब जी में जैसी धुन समायी, वैसी नीति से काम ले लिया पर अब शासन के सच्चे स्वामियों की निद्रा टूटी । प्रजा ने इस ओर ध्यान देना आरम्भ किया । राजमाता की इस अन्तिम कार्य्यवाही से जनता रुष्ट हुई और राजमाता भी सहम गयीं । फ़र्वरी १६०७ (अर्थात् उपर्युक्त घटना के एक ही महीने पीछे) में एक दूसरी घोषणा निकली इसमें शीघ्र ही वैध शासन और पार्लिमेण्ट स्थापित करने का वचन दिया गया । युआन-शिह-काइ प्रधान सभा के (प्रधान मंत्रियों की सभा जो सम्राट को परामर्श देती और शासन के प्रधान विभागों का प्रवन्ध करती थी) सदस्य नियत किये गये । एक ही महीने में प्रजा-रव ने द्वितीय दल को परास्त करके फिर तृतीय दल को सशक्ति कर दिया ।

२० सितम्बर की एक राजघोषणा द्वारा यह निश्चित हुआ कि

एक 'जातीय सभा' नियत की जाय। और राजकुमार पु लुन के नेतृत्व में, इस सभा के नियम आदि निश्चित करने के लिये, एक कमेटी नियत की गयी। १६ अक्तूबर को यह घोषित किया गया कि प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सभाएँ और प्रत्येक नगर और ज़िले में उसी प्रकार की स्थानीय सभाएँ होंगी। पु लुन कमेटी ने शीघ्र ही अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। उसने और तो सब नियम बनाए पर वस्तुतः सभा को कोई अधिकार नहीं दिया गया। वह केवल परामर्श दे सकती थी। परामर्श का मानना न मानना सर्कार की इच्छा पर था। उसकी परिस्थिति भारतीय व्यवस्थापक सभाओं की सी ही प्रायः थी। जो कुछ हो, राज ने रिपोर्ट की बातें मान लीं। यह निश्चित हुआ कि अगस्त १९०९ में प्रान्तीय सभाएँ आरम्भ हो जायँ। २७ अगस्त १९०८ को शासनप्रणाली में जो परिवर्त्तन आवश्यक समझे गये उनकी सूचना जनता को दे दी गयी और यह भी घोषित कर दिया गया कि नौ वर्ष में अर्थात् १९१७ में 'जातीय सभा' (या पार्लिमेण्ट) का पहिला अधिवेशन होगा।

इन घोषणाओं से ही पता चलता है कि उस समय चीनीदर्बार की मानसिक दशा क्या थी। वस्तुतः उसकी बुरी गत थी। एक ओर तो बॉक्सर युद्ध के समय का अनुभव उसे यह प्रेरणा कर रहा था कि बिना उन्नति किये, बिना प्रजा के स्वत्त्वों की वृद्धि किये, काम नहीं चल सकता; दूसरी ओर पुराने कर्म्मचारी, मञ्चू सर्दार, खुशामदी दर्बारी यह कहते थे कि प्रजा को दबा रखने में ही कल्याण है क्योंकि जहाँ एक बार बाग ढीली की, शीघ्र ही बेड़ा डूब जायगा और प्रजा सारे अधिकार हस्तगत कर लेगी। बस चीन-सरकार इन्हीं दोनों मतों के झकोरों में पड़ी कभी इधर जाती कभी उधर सुधार करती थी पर अधूरा; सुधार रोकती थी पर दबते हुए।

इसी साल नवम्बर में सम्राट् कांगह्यू का देहान्त हो गया। उनका छोटा बच्चा पुयि सम्राट् हुआ। थोड़े ही दिनों पीछे वृद्धा राजमाता का

भी देहान्त होगया। स्वर्गीय सम्राट् के भाई राजकुमार चुन छोटे सम्राट् के अभिभावक नियत हुए। मृत्यु के कुछ पहिले, राजमाता निम्नलिखित घोषणा कर गई थीं:—

"अत्यन्त अल्पगुणोंवाली होने पर भी यह मेरा सौभाग्य था कि मैं देवलोकवासी सम्राट्, अपने पति, हिसुएन फेंग, की पत्नियों में चुनी गयी। जब मेरे पुत्र सम्राट् तुंग चिह, १८६१ (सं० १९१८) में सिंहासन पर बैठे, उस समय देश म विद्रोह फैला हुआ था। ताइपिंग और पगड़ी वाले विद्रोही, मुसलमान विद्रोही और क्वाइचन जंगली बारी २ से सारे देश में अशान्ति फैला रहे थे। समुद्र तट के प्रान्त कष्ट में थे, प्रजा पीड़ित हो रही थी, चारो ओर दुःख ही दुःख देख पड़ता था। पूर्वीय राजमाता की सहायता से दिनरात परिश्रम करके मैंने राज का काम चलाया। जो नीति मेरे स्वर्गीय पति बतला गये थे उसका अनुसरण करते हुए, मैं सब कर्म्मचारियों और सेनापतियों को उत्तेजित करती रही, उनके कामों का निरीक्षण करती रही और शान्ति के लिये अनवरत प्रयत्न करती रही। मैंने योग्य लोगों को पदों पर नियत किया और सत्परामर्श सदैव माना; मैंने प्रजा के समस्त कष्टों का निवारण किया। दैवी कृपा से मैंने विद्रोहों का दमन किया और भय के स्थान में शान्ति स्थापित की।

"जब सम्राट् क्वांग हसू सिंहासन पर बैठे उस समय परिस्थिति और भी भयावह थी। प्रजा अत्यन्त निर्धन हो गयी थी। राज्य के भीतर दुःख ही दुःख था; बाहर से निरन्तर कष्ट मिल रहा था; अतः मुझे शासन में सुधार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। १९०६ में मैंने एक घोषणा द्वारा नियमित शासन की सूचना दी; इस साल मैंने उसके स्थापित होने की तिथि भी निश्चित कर दी है। हर्ष की बात है कि मेरा स्वास्थ्य सदैव अच्छा रहा और मेरी शक्ति बनी रही। परन्तु न जाने क्यों, गत ग्रीष्म ऋतु से मैं प्रायः रुग्ण रहती हूँ। सर्कारी कामों के कारण मुझे विश्राम न मिल सका। मेरी नींद और भूख जाती रही फिर भी मैंने एक दिन भी विश्राम न लिया।

"गत शनिवार को सम्राट् की मृत्यु हुई । यह दुःख मेरे लिये असह्य होगया । मैं अपने को सँभाल नहीं सकती । मेरा रोग असाध्य है; बचने की कोई आशा नहीं है ।

इस समय सुधार का क्रमशः प्रचार हो रहा है । नवीन सम्राट् अभी बच्चे हैं और उनको शिक्षा की आवश्यकता है । उनके अभिभावक और मंत्रियों को चाहिये कि देश की जड़ प्रबल करने में उनको सहायता दें । सम्राट् को चाहिये कि अपने शोक को भूल कर ऐसा प्रयत्न करें जिससे कि उनके पूर्वजों की कीर्ति और भी उज्ज्वल हो । यही मेरी हार्दिक आशा है ।"

यह उस विचित्र महिला के अन्तिम वाक्य हैं । यह कहना कठिन है कि चीन के वर्तमान इतिहास में कितनी अच्छी या बुरी बातों के लिये यह उत्तरदात्री हैं ।

दो दिसम्बर को ह्सुआन तुंग के नाम से पुयि सम्राट् हुए । पार्लिमेण्ट के विषय में जो घोषणा हुई थी वह फिर से दुहरायी गयी । लोगों को इस नये शासन से बड़ी २ आशाएँ थीं क्योंकि राजकुमार चुन बुद्धिमान् मनुष्य थे और बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर चुके थे । पर सब आशाएँ झूठी निकलीं । एक महीना भी न होने पाया था कि युआन पदच्युत किये गये । सर्कारी गज़ट में यह लिखा गया कि युआन के पैर में कोई रोग हो गया है अतः वह काम नहीं कर सकते और अपने घर जा कर औषधि सेवन करेंगे । तात्पर्य्य यह हुआ कि वह निकाले गये और उनको सीधे घर जाने की आज्ञा हुई । बड़े कर्म्मचारियों को निकालने की यह प्रथा सभी देशो में प्रचलित है । कई यूरोपियन राजदूत चीन सर्कार से युआन को रखने के लिये आग्रह करना चाहते थे क्योंकि वह उनकी योग्यता से परिचित थे पर रूस और जापान उनसे बुरा मानते थे क्योंकि वह सदा इन दोनों की लोभपूर्ण नीति का विरोध करते आये थे, अतः कोई राष्ट्र कुछ न बोला ।

युआन के निकाले जाने से चीन के शत्रु ही प्रसन्न नहीं हुए किन्तु चीन के सच्चे हितेच्छु, नवयुवक दल, भी प्रसन्न हुए क्योंकि उनका विश्वास था कि जबतक शासन का सूत्र युआन के हाथ में रहेगा वह प्रजातंत्रवादियों की प्रगति को बढ़ने न देगा। पर इस समय तो जड़ों की बन आयी थी। नवीन राजमाता (बच्चे सम्राट् की माँ) ने प्रधान हिंजड़े लि लिएन हुग को अपना कृपापात्र बना रक्खा था। वही राजकार्य्य का कर्ता धर्ता था। राजकुमार चुन इस बात से असन्तुष्ट थे पर उनमें इतनी दृढ़ता नहीं थी कि कुछ बोलसकें। उन्होंने युआन को फिर बुलाना चाहा पर यह भी न कर सके। शासन की दशा बिगड़ती ही गयी।

१४ अक्तूबर १९०९ को प्रान्तीय सभाएँ बैठीं। लोग सभा समाज के नियमों से बहुधा अपरिचित थे पर चीन में शिक्षा का प्रचार बहुत है, दूसरे सब को देशहित की सच्ची लगन लग रही थी अतः यह सभाएँ बहुत कुछ काम कर गयीं। साल भर के भीतर इन्होंने दो बार यह प्रार्थना की कि पार्लिमेण्ट १९१७ के स्थान में और पहिले हो। पर दोनों प्रार्थनाएँ अस्वीकृत रहीं। इस से यह न समझना चाहिये कि इन्होंने कुछ काम न किया। लोगों को जो शिक्षा मिली वही बहुत मूल्य रखती है।

३ अक्तूबर १९१० को 'जातीय सभा' बैठी, उसके नियम यह थे—

(१) दो सभापति और उपसभापति होने चाहियें।

(२) खुलते समय स्वयं सम्राट् या उनके मनोनीत कोई राजकुमार उपस्थित होंगे।

(३) जिन २ विषयों पर सभा को उस साल विचार करना होगा वह पहिले ही दिन बतला दिये जायँगे।

(४) सदस्यों का चुनाव सम्राट् करेंगे। जो सदस्य प्रान्तीय सभाओं के प्रतिनिधि होंगे उनका चुनाव प्रान्तीय शासक करेंगे।

(५) प्रत्येक सदस्य तीन वर्ष के लिये चुना जायगा।

(६) सदस्यों की संख्या २०० होगी। वह इस प्रकार विभक्त होगी—

(क) राजवंश के राजकुमारों, ड्यूकों और सर्दारों की ओर से १६
(ख) मञ्चू और चीनी पैत्रिक सर्दारों की ओर से १२
(ग) मंगोल, तिब्बती और मुसलमान सर्दारों की ओर से १४
(घ) राजवंश के निकटतम सम्बन्धियों की ओर से ६

(यह सम्बन्धी लोग आपस में ६० व्यक्तियों को चुनेंगे, जिनमें से ६ को सम्राट् सदस्य चुनेंगे, शेष आशाधारी सदस्य कहलाएँगे)

(ङ) पेकिंग के उच्च कर्म्मचारियों की ओर से ३२

(कर्म्मचारी लोग आपस में से १६० व्यक्ति चुनेंगे, जिनमें से उपर्युक्त रीति से १२८ 'आशाधारी सदस्य' हो जायँगे और ३२ सम्राट् द्वारा चुने जायँगे)

(च) प्रसिद्ध विद्वानों, अध्यापकों, ग्रंथकारों की ओर से १०
(छ) बड़े २ ज़मीनदारों और धनाढयों की ओर से १०
(ज) प्रान्तीय सभाओं की ओर से १००

(सब प्रान्तों के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर नहीं थी। सब से बड़ी संख्या, ६—राजधानी वाले प्रान्त चिहली से आती थी)।

कुल संख्या २००

इस सभा का चीनी नाम त्ज़ेचेंनग्युआन था। इसके सामने दो प्रकार के कार्य्य आते थे। कुछ तो स्वतंत्र विषय जो सम्राट् की ओर से इसके सामने उपस्थित किये जायँ। दूसरे, कुछ प्रश्न ऐसे थे जो प्रान्तीय सभाओं से आते थे। यदि किसी प्रान्तीय सभा और उस प्रान्त के सूबेदार से किसी विषय पर मतवैषम्य हो जाय तो वह विषय जातीय सभा के सामने आता था। फिर सभा उसपर विचार करके अपना निश्चय सम्राट् के सामने रखती थी। यदि किसी सूबेदारके विरुद्ध कोई शिकायत हो तो उस पर विचार करना भी इस सभा का ही काम था। भिन्न २ कार्य्यों के अनुसार इस सभा के सदस्य कई उपसभाओं में विभक्त थे। पहिले प्रत्येक प्रश्न उपयुक्त उपसभा में उपस्थित किया जाता फिर वहाँ जब उस पर

कुछ निश्चय हो लेता तब पूरी सभा के सामने आता। सदस्यों को अपनी स्वतंत्र सम्मति देने का पूर्ण अधिकार था। कई अनुभवी लोगों का कहना है कि पहिले अधिवेशन में ही इस सभा का काम किसी पाश्चात्य देश की पार्लिमेण्ट से कम गौरव का नहीं था।

इस सभा के स्थापित होने के कुछ ही काल पीछे प्रान्तीय सभाओं ने पार्लिमेण्ट के लिये फिर प्रार्थना की। जातीय सभा ने भी इसका अनुमोदन किया। कई सदस्यों ने उत्साह के मारे अपनी अँगुलियों को काट कर रक्त से हस्ताक्षर किये। फिर भी प्रार्थना के स्वीकृत होने की विशेष आशा न थी पर इस अवसर पर एक अनायास सहायता मिल गयी। राजमाता लुंग यु सम्राट् के अभिभावक राजकुमार चुन के विरुद्ध थीं। उन्होंने सभाओं का साथ दिया। परिणाम यह हुआ कि प्रार्थना स्वीकार हो गयी और ४ नवम्बर १९१० को यह घोषणा हुई कि तीन वर्ष के भीतर ही पार्लिमेण्ट स्थापित हो जायगी और (*) कैबिनेट द्वारा शासन होगा। पार्लिमेण्ट की दोनो शाखाओं के लिये नियम भी प्रकाशित किये गये।

वक्तव्य-(*)—प्रायः प्रत्येक पार्लिमेण्ट की दो शाखाएँ होती हैं। इन के नामों और अधिकारों में देश २ में भेद होता है। पर एक ऊँची और दूसरी नीची मानी जाती है। प्रायः सभी नियमों पर पहिले नीची शाखा में विचार होता है। फिर जब यह शाखा कोई मंतव्य निश्चित कर लेती है तब ऊँची शाखा उस प्रश्न पर विचार करती है। प्रायः नीची शाखा में सामान्य जनता के प्रतिनिधि और ऊँची शाखा में धनाढ्यों जागीरदारों, उपाधिधारियों आदि विशिष्ट जनों के प्रतिनिधि रहते हैं। आजकल बहुत से देशों में नीची शाखा का ही प्रभाव बढ़ता जाता है।

मंत्रिमण्डल को कैबिनेट कहते हैं। प्रायः पार्लिमेण्ट वाले देशों में वह प्रथा है कि पार्लिमेण्ट में जो दल प्रबल होता है उसी के नेता मंत्री होते हैं। इनके समूह को कैबिनेट कहते हैं। यह लोग पार्लिमेण्ट के सदस्

जातीय सभा के पहिले वर्ष की यही कार्य्यवाही है। यह कुछ कम नहीं है। चीन सर्कार से कैबिनेट का वचन ले लेना बड़ी भारी बात थी। सभा से और मंत्रियों की प्रधान सभा से निरन्तर झगड़ा रहता था क्योंकि सभा बहुत से ऐसे कामों में हस्तक्षेप करती थी जो उसके अधिकार के बाहर थे। बात यह है कि पार्लिमेण्ट न होते हुए भी वह अपने को एक प्रकार की पार्लिमेण्ट ही समझती थी और शासन के सभी अंगों की देख रेख करना चाहती थी। मंत्री लोग इसे अनधिकार चर्चा समझते थे। सभा ने अपनी ओर से एक तो यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि चीन से अफ़ीम एकमात्र उठा देनी चाहिये, दूसरे यह कि जिन लोगों ने सर्कार के विरुद्ध कोई राजनैतिक आन्दोलन किया हो उन सब को क्षमा-कर देना चाहिये, तीसरे यह कि चीनियों को जो अनिवार्य्य शिखा (pig-tail—सूअर की पूँछ) रखनी पड़ती है, यह प्रथा उठा दी जाय। (जब चीनियों को मंचुओं ने जीता था तो उनको दासत्व-सूचक, स्त्रियों की भांति, लम्बी चोटी रखने की आज्ञा दी गयी थी)

होते हैं अतः प्रजा के प्रतिनिधि होते हैं और प्रजा की इच्छा के विरुद्ध काम नहीं कर सकते, क्योंकि यदि प्रजा इनसे असन्तुष्ट हो जाय तो पार्लिमेण्ट में कोई दूसरा दल प्रबल हो जाय और इनका अपना स्थान छोड़ना पड़े।

जहाँ कैबिनेट की प्रथा नहीं है वहाँ पार्लिमेण्ट हो या न हो पर मंत्रियों को स्वयं राजा वा सम्राट् [वा सभापति] नियत करता है। यह मंत्री लोग पार्लिमेण्ट के सदस्य नहीं होते। अतः प्रजा के प्रतिनिधि भी नहीं होते। इनको पार्लिमेण्ट तो नियत करती ही नहीं और न वह इनको निकाल सकती है, इसलिये यह लोग उसकी परवाह भी नहीं करते। इनका मुख्य उद्देश्य राजा की इच्छाके अनुसार काम करना होता है, प्रजा की इच्छा के अनुसार नहीं। चीन की प्रधान मंत्री सभा में इसी राजनियुक्त प्रकार के ही मंत्री थे, जिन पर प्रजा का कोई दबाव नहीं था।

इन बातों से यह स्पष्ट है कि अब चीनी जाति की दीर्घसुषुप्ति का अन्त हो गया था। प्रजा अपने अधिकारों को जानने और उनके लिये आग्रह करने लग गयी थी। पहिले तो आँख मलते २ उठी थी, इस लिये उस का स्वर भी अस्पष्ट और धीमा था; फिर ज्यों २ नींद दूर होती गयी शब्द भी स्पष्ट और गम्भीर होता गया। पूर्ण जागृति की अवस्था में क्या २ हुआ, यह आगे प्रकट होगा।

षष्ठ अध्याय ।

जागृति ।

राजा प्रजा में विरोध और वैमनस्य बढ़ता ही गया। रूस जापान की लड़ाई के पीछे यह दोनों राष्ट्र मित्र हो गये थे। १९१० में आपस में एक प्रकार का शर्तनामा करके इन्होंने मंचूरिया आपस में बाँट सा लिया। १९११ में रूस ने मंगोलिया पर हाथ बढ़ाया पर मंचू सर्कार तटस्थवत् यह सब देखती रही। इसी से प्रजा उससे खिन्न थी। राजकुमार सुन निश्चिन्त थे। उन दिनों जातीय सभा की बैठक बन्द थी, सदस्य अपने २ घर गये हुए थे। कोई वक २ करने वाला भी न था इससे उनका और छुट्टी थी। इस छुट्टी से एक लाभ तो उन्होंने यह उठाया कि अपने को चीन की सारी सेनाओं और जहाजी बेड़ों का सेनापति और अपने भाई को उप-सेनापति नियत कर दिया। इससे प्रजा की रोषाग्नि और भड़क उठी।

इस आग की पहिली चिनगारी कैण्टन नगर में देख पड़ी। वहाँ किसी ने फूची नामक एक तातारी सेनापति को मार डाला। चीन सर्कार ने यह प्रमाणित करना चाहा कि इस हत्या का कोई राजनैतिक महत्व नहीं है वरन् यह घरेलू द्वेष से की गयी है, पर घातक यह कहता था कि मैं नवयुवक दल का सदस्य और डाक्टर सुन-यतसन का अनुयायी हूँ और मैंने फूची को राजनैतिक कारणों से मारा है। फाँसी मिलने के कुछ ही काल पहिले उसने कहा "मैं शीघ्र ही मरता हूँ परन्तु फिर आऊँगा और तब मैं उन लोगों को नाश करूंगा जो प्रजा को यह कष्ट

दे रहे हैं। उस के फाँसी देते ही एक छोटासा बलवा हुआ, शीघ्र ही दबा दिया गया।

नवयुवक या विद्रोही दल का नाम पर वह को मिंग तोंग था। इसका उद्देश्य जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, चीन में प्रजातंत्र स्थापित करना था एक नरम दल भी था। इसको 'पाव हुआंग ह्वाइ' कहते थे। इसके कुछ नेताओं से सर्कार रुष्ट थी। उनके अनुयाइयों ने क्षमा की प्रार्थना की परन्तु उन की प्रार्थना स्वीकृत न हुई; फल यह हुआ कि वह भी विद्रोही दल में जा मिले।

यह कोई नवीन बात नहीं है। 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' ऐसा बहुधा देखा गया है कि शासक गण अपने दुराग्रह से अपने सहायकों को भी रुष्ट करके अपने शत्रुओं का बल बढ़ाते हैं।

यह विद्रोही दल सामान्य संस्था न थी। यह एक गुप्त सभा थी जिसका संगठन अत्यन्त सुदृढ़ था। अमेरिका, यूरोप, जापान, भारत,--पृथ्वी के सभी बड़े देशोंमें इसकी शाखाएँ थीं, अतः इसको सारी पृथ्वी से आर्थिक सहायता मिल सकती थी और यदि इसका कोई सदस्य कभी आपत्ति में पड़जाता तो वह एक देशसे दूसरे देश बड़ी सुगमता से जा सकता, और जहाँ जाता वहीं उसको सहायक और रक्षक मिल जाते। इससे सहानुभूति रखने वाले विदेशी भी बहुत थे। इस संस्था के नेता डाक्टर सुन यत सन थे। इस महापुरुष की जहाँ तक प्रशंसा की जाय थोड़ा है। अंग्रेजी में इसकी एक जीवनी है। मैं उस में से ही कुछ वाक्य उद्धृत करता हूं:-

'An unkind thought, far lessan unkind word, is foreign to his nature ; a keen regard for the feelings of those around him is apparent in his every word and deed ; unselfishness to a degree undreamt of amongst modern men, a living expression of the Sermon on the Mount.'

He aws listened to in Chnia because of "the transparent honesty of the man, his manifest patriotism, the simplicity of his character, the readiness to endure all for his country's sake, even torture and death. Persecuted, imprisoned slighted, a price set on his head, stamped as an outcast and turned out of home and country, refused shelter now by one nation, now by another, until the wide world seemed to afford no place of safety where he could find rest." "Uuder no flag was he safe; nor in the uttermost parts of the earth, for a period of well nigh twenty years, could he feel that a cruel death was not imminent"

"कठोर शब्द की तो बात दूर रही, कठोर विचार भी उन के स्वभाव के विरुद्ध है; उनके प्रत्येक बात और काम से यह टपकता है कि उनको दूसरों का कितना ध्यान रहता है; उनमें जितनी निस्वार्थता है उसका आजकल लोग स्वप्न भी नहीं देख सकते; वे पर्वत पर के सदुपदेश की जीवित मूर्ति है" [यह उपदेश ईसाने अपने शिष्यों को दिया था—उपदेश वस्तुतः बड़ा ही दिव्य हैं ।]

"उनकी प्रत्यक्ष ईमानदारी, उनकी स्पष्ट देशभक्ति, उनका सरल आचरण, उनका देश के लिये सब कुछ—अत्यन्त शारीरिक कष्ट और मृत्यु तक—सहने के लिये सदैव प्रस्तुत रहना"—इन्हीं कारणों से चीन में लोग उनकी प्रतिष्ठा करते थे । "सताये जाकर, कैद किये जाकर, अपमानित किये जाकर, उनके सिर के लिये इनाम रक्खे जाने पर, घर से, देश से, समाज से बहिष्कृत होकर, जिस २ देश में शरण के लिये जाते वहीं

से निकाले जाकर यहाँ तक कि ऐसा प्रतीत होता था कि सारी पृथ्वी में अब इनके लिये कहीं विश्राम लेने का स्थान नहीं है" यह वीर पुरुष न घबराया।

"किसी देश में वह सुरक्षित न थे; बीस वर्ष तक पृथ्वी का ऐसा कोई भाग न था जहाँ इनके लिये निर्दय रीति से मार डाले जाने की आशंका न रही हो"

इस से यह पता चलता है कि वह व्यक्ति कैसा प्रभावशाली रहा होगा जिसको मारने के लिये चीन सर्कार को इतना प्रबन्ध करना पड़ा और फिर भी सफलता न हुई। साथ ही यह भी सिद्ध है कि जो राजनैतिक नेता ऐसा निर्भय, निष्कपट, निःस्वार्थ होगा उसकी सफलता अवश्यमेव होगी। कोई प्रबल से प्रबल गवर्नमेंएट उसका कुछ नहीं कर सकती।

पीछे से जब विद्रोह बढ़ा तो खूनखराबी भी हुआ पर स्वयं डाक्टर सुनयतसन इस बात को पसन्द नहीं करते थे। उनका सिद्धान्त यही था कि यदि चीन की प्रजा एक हृदय होकर उठ खड़ी हो तो बिना रक्त-पात के ही उसकी विजय होगी।

चीन सर्कार ने इनको पकड़ाने या मारने वाले के लिये १,५००,०००) (पन्द्रहलाख) रुपये का पुरस्कार रक्खा था। एकबार उसे सफलता भी होते २ रह गयी। १८९६ में सुनयतसन लएडन में थे। कुछ चीनियों ने इनको धोखा देकर पकड़ा दिया और यह चीनी लिगेशन में (जिस घर में चीनी राजदूत रहता था) क़ैद कर लिये गये। इस बात का पता लिगेशन के एक अँग्रेज़ नौकर को लगा। उसकी स्त्री बड़ी उदार थी। उसने सन के मित्र डाक्टर कैएटली (यह सज्जन अंग्रेज़ हैं) के पास एक पत्र भेजा। डर के मारे उसने अपना हस्ताक्षर नहीं किया। डाक्टर कैएटली ने इस बात की सूचना अंग्रेज़ सर्कार को दी कि लएडन में एक ऐसी बात हो गयी जिससे अंग्रेजों का सदा अपमान होगा। परिणाम यह हुआ कि सन छूट गये। जिन चीनियों ने इनको धोखा देकर पकड़ाया

था उनमें से दो को अपने घृणित कार्य्य पर ऐसी लज्जा आयी कि उन्होंने आत्महत्या करली।

डाक्टर सन ने अपनी गुप्त सभा की कार्य्य-शैली का कुछ वर्णन किया है। वह अत्यन्त रोचक है। "we had a head, a chief and a body of leaders, all earnest, intelligent, courageous men. They were elected, according to constitutional principles, by a body of us who met, necessarily in Secret. We had a branch of our society in every province. Our meetings of the leaders were held at various houses, the rendezvous, being constantly changed. Between thirty and forty centres were established in the various towns of each districts where members were ready to rise at a given moment to the number of at least 1000 in each centre, to take control of the public affairs of the district communication with each of these districts was made by the employment of messengers. Our communications were by word of mouth. We had elected bodies of our followers who had been taught a system of constitutional rule for each district, all ready to take office at a given signal and put the System into practice."

"हमारे प्रधान, नायक और नेता सभी उत्साही, बुद्धिमान और साहसी मनुष्य थे। हम लोग गुप्त रूप से मिलकर इनको नियमानुसार

चुनते थे । हमारी समिति की शाखाएँ प्रत्येक प्रान्त में थीं । हमारे अधिवेशन भिन्न २ घरों में होते थे और हम सभी स्थान बराबर बदलते रहते थे । प्रत्येक ज़िले के कसबों में तीस या चालीस केन्द्रस्थान थे। प्रत्येक केन्द्र में कम से कम १००० मनुष्य इशारा पाते ही बलवा करने और ज़िले का काम अपने हाथों में ले लेने के लिये प्रस्तुत थे। ज़िलों में समाचार आदि मनुष्यों द्वारा जाते थे और हमारा सब व्यवहार मौखिक (लिख कर नहीं) होता था । प्रत्येक जिले में हमारे अनुयाइयों के ऐसे समूह थे जिनको विधिपूर्वक शासन करने की शिक्षा दी गयी थी। यह लोग इशारा पाते ही पदों को लेकर निर्दिष्ट रीत्यनुसार काम करने के लिये तय्यार रहते थे "। इस संक्षिप्त वर्णन से ही पता चलता है कि यह संस्था कितनी कार्य्यकुशल और सुसंगठित थी ।

अस्तु, अपने वचनानुसार चीन सर्कार ने एक कैबिनेट और प्रिवी-कौंसिल भी स्थापित करदी, पर इस से भी शान्ति न हुई । होती कैसे ? जो काम सर्कार करती थी अधूराही करती थी । कैबिनेट का तो नाम हुआ पर उस में राजवंश के कई राजकुमारों को स्थान दिया गया और एक अत्यन्त अनुदार मंचू सरदार, राकुमार जिंग, प्रधान मंत्री बना दिये गये और उनको यह अधिकार दे दिया गया कि और मंत्रियों के जिस निर्णय को चाहें पलट दें । इस का तात्पर्य्य यह हुआ कि कैबिनेट के हाथ में वस्तुतः बहुत कम अधिकार रहा । सच्चा और पूरा अधिकार अब भी राजवंश के ही हाथ में रहा ।

इन्हीं दिनों उत्तरी चीन में नदियों में इतनी बाढ़ आई कि कई गाँव वह गये और खेती नष्ट होगयी । डकैती बढ़ गई । प्रजाने जैसा कि सर्वत्र होता है, इन बातों के लिये भी सरकार को ही दोषी ठहराया, यद्यपि वस्तुतः उसका कोई अपराध नहीं था ।

इसी समय एक और छोटी सी बात खड़ी हो गयी । बात सचमुच छोटी ही थी । उसका महत्व कुछ भी न था पर वही अन्तिम विद्रोह का

कारण हो गई। लोग सर्कार से रुष्ट तो थे ही, एक बहाना मिल गया। सर्कार भी समय पर न संभल सकी; उससे भूलें होती ही गईं। उधर नवयुवक दल ने इस अवसर को अपने लिये ईश्वर का साक्षात् प्रसाद समझा, उनकी चालोंने गवर्नमेंट को और भी घबरा दिया और जो बात थोड़े में ही निपट जाती वह इतनी बढ़ गई कि गवर्नमेंट बिचारी की घातक ही होकर रही।

चीन सर्कार का एक विभाग था जिसका काम रेल, तार, नहर, पुल, सड़क आदि का प्रबन्ध करना था। उस समय चीन में रेल का प्रचार अच्छा था। प्रत्येक प्रान्त अपनी सीमा में रेल का प्रबन्ध अपने हाथ में रखता था। इस काम के लिये रुपया दो प्रकार से आता था। कुछ तो धनाढ्य, सेठ, साहूकार, चन्दे के रुप में देते थे और कुछ, लोगों की मालगुज़ारी के हिसाब से टैक्स के रूप में लिया जाता था। प्रान्त के रुपये से जो रेल चलती थी वह प्रान्त की सीमा में ही रहती थी और उससे जो लाभ होता था वह भी प्रान्तीय कोश में जाता था। यों कहना चाहिये कि प्रत्येक प्रान्त एक रेलवे कम्पनी था। पर इन रेलों का प्रबन्ध ठीक न था। मनमाना अन्धेर होता था। बेईमानी की कोई सीमा न थी। बड़े २ सर्कारी कर्म्मचारी जी खोल कर रुपया खाते थे।

इस कुप्रबन्ध को दूर करने के लिये उक्त विभाग के सभापति ने एक विदेशी कम्पनी से (जिस में अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन और अमेरिकन साहूकार सम्मिलित थे) ६० लाख पौण्ड (९ करोड़ रुपया) ऋण लिया और शीघ्र ही ४० लाख पौण्ड (६ करोड़ रुपया) और लेने का विचार प्रकट किया। यह रुपया रेलों के लिये व्यय किया जानेवाला था। इसके पहिले चीन सर्कार उसी कम्पनी से १ करोड़ पौंड (१५ करोड़ रुपया) ५ रुपये सैकड़े व्याज पर ले चुकी थी। यह पहिला ऋण सिक्कों के सुधार के लिये था। इसकी भी बड़ी आवश्यकता थी। चीन में डालर नाम के १६ प्रकार के भिन्न २ तोल और मूल्य के सिक्के चलते थे, तांबे के सिक्कों

का तो पूछना ही क्या था। अकेले पेकिंग में ५ प्रकार के डॉलरों का प्रचार था।

अस्तु. सर्कार का यह प्रस्ताव था कि जितनी ट्रंक लाइनें हैं (अर्थात् वह लाइनें जो एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती हैं) सर्कार के हाथ म रहें और छोटी २ शाखा लाइनें पूर्ववत् प्रान्तों के हाथ में रहें। सरकार का यह कहना कुछ असंगत नहीं था। प्रधान लाइनों पर सर्कार का अधिकार रहना ही अच्छा है। बहुत से देशों में ऐसा ही होता है। रेलें केवल सामान्य यात्रियों और सामग्रियों के वहन क लिये नहीं हैं; युद्ध आदि के समय में उनका राजनैतिक महत्व भी होता है। यदि देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने के लिये भिन्न २ प्रान्तों द्वारा शासित रेलों से काम लेना हो तो आवश्यक कामों में बड़ी अड़चन पड़े। अतः इस में सन्देह नहीं कि सर्कारी प्रस्ताव न्याय्य था।

परन्तु जनता रुष्ट तो पहिले ही से थीं, उसने इसका उलटा ही अर्थ निकाला। हुनान प्रान्त में १०,००० मनुष्यों ने एकत्र होकर सूबेदार को सर्कार के पास यह प्रार्थना भेजने पर विबश किया कि यह प्रस्ताव अभी स्थगित किया जाय। चारों ओर पुकार मच गयी। जातीय सभा ने सर्कार से विशेष अधिवेशन करने की प्रार्थना की पर यह प्रार्थना स्वीकार न हुई। जिन लोगोंने इन प्रान्तीय रेलों के लिये चन्दे दिये थ वह घबराये कि सर्कार हमारा रुपया मार लिया चाहती है और हमारे रुपयों से बनी रेलों से आप लाभ उठाना चाहती है। जिन बेईमान लोगों को अभी तक इन रेलों से अनुचित लाभ होता था उन्होंने गुप्त रूप से इस आन्दोलन को और भड़काया। चीन में किसी सर्कारी काम का आज तक इतना विरोध हुआ ही न था। सारे समाचार पत्र विरोध पर तुले थे। देशभक्ति, स्वार्थ नीति, अज्ञान का ऐसा विचित्र संमिश्रण हुआ कि जिसके आगे तर्क की चलने ही न पाती थी।

सर्कार ने लोगों का समझना चाहा। प्रान्तीय रेलों का कुप्रबन्ध,

उनके प्रबन्धकर्ताओं की अनुभवहीनता, अयोग्यता और बेईमानी, कोई छिपी बात न थी। यह भी प्रकट था कि यदि सर्वत्र एक सर्कारी शासन हो जाय तो यह सब गड़बड़ बहुत कुछ दूर हो जायगा। यह भी दिखलाया गया कि लोगों से रेल के लिये जो टैक्स लिया जाता है यह वस्तुतः अन्याय है और प्रजा को लूटना है।

परन्तु क्रोध की दशा में तर्क का वश नहीं चलता। प्रजा की ओर से सारे समाचार पत्र सर्कार के शत्रु हो रहे थे। उन्होंने यह उत्तर दिया कि यद्यपि रेल के लिये टैक्स लेना एक प्रकार का अन्याय है पर विदेशियों से ऋण लेना और उसको व्याज के साथ लौटाना और भी घोर अन्याय है। टैक्स का द्रव्य प्रजा से लिया जाता है पर उसका लाभ देश को ही होता है; सर्कार जो प्रस्ताव कर रही है उसके अनुसार देश के द्रव्य से विदेशियों को लाभ होगा। अतः यह उस से भी बड़ी लूट है।

सरकार का सारा समझाना व्यर्थ गया। अशान्ति बढ़ती ही गई। अन्त में लोगों के भय को दूर करने के लिये एक युक्ति निकाली गयी। जिस प्रकार भारत में युद्ध ऋण के बारबाण्ड चल रहे हैं उसी प्रकार के रेलवे-बाण्ड निकाले गये। जिस २ ने प्रान्तीय रेलों में जितना २ द्रव्य दिया था उस २ का उतने २ के बांड के कागज देने का विचार हुआ। इनपर ६ रुपये सैकड़े व्याज देने का भी वचन दिया गया। इसका तात्पर्य्य यह था कि जिन लोगोंने रुपया दिया था वह यह न समझें कि रुपया डूब जायगा या उस से कोई लाभ न होगा।

परन्तु इस अत्यन्त न्याय्यबात का भी कुछ प्रभाव न हुआ। अधिकांश प्रान्तों ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार न किया।

यह विचित्र अनवस्था हुई। जो गवर्नमेंट बुरे से बुरे काम कर डालती थी और कोई चूँ न करता था आज उसी के एक अत्यन्त न्याय्य, युक्तिसंगत और उदार काम का इतना विरोध! सम्राट् के अभिभावक राजकुमार चुन और उनके सारे परामर्शदाता अमात्य और मंत्री किंकर्त-

व्य विमूढ़ और अवाक् रह गये। प्रजा में एक ऐसी शक्ति सञ्चारित हो गयी थी जिसका उन्हें स्वप्न में भी ध्यान न था। विरोध धीरे २ एक ऐसा रूप पकड़ता जा रहा था जिसके आगे उनकी बुद्धि कुंठित हो रही थी और उनका धैर्य्य थर्रा रहा था।

सप्तम अध्याय ।
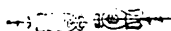
विद्रोह का आरम्भ ।

अभी तक कोई खुला विद्रोह नहीं हुआ था पर विद्रोह होने में देर भी न थी। कभी २ वर्षा ऋतु में जब आकाश बादलों से घिर जाता है, बादल बिजली से भरे से होते हैं पर कुछ देर तक ऊपर से शान्ति प्रतीत होती है। देखते ही देखते किसी एक अंश में बिजली चमकती है और फिर सारा मेघमण्डल बिजलीका एक विस्तृत चादर हो जाता है। गर्मीमें वन के सभी वृक्ष सूखे होते हैं पर आग सर्वत्र एक साथ नहीं लगती। किसी एक कोनेमें पहिली लपक उठती है और फिर क्षण भर में सारा वन अग्निकुण्ड हो जाता है। बस ठीक यही दशा चीन की थी। सारे देश में अशान्ति फैली हुई थी। सारी प्रजा क्षुब्ध हो रही थी पर ऊपर से इसे आन्तारिक हलचल का कोई चिन्ह नहीं देख पड़ता था। पहिली चिंगारी की देर थी।

यह ज्वाला पहिले स्ज़ेचुआन में फुटी । स्ज़ेचुआन चीन का सब से पश्चिमी प्रान्त है। यह सब से समृद्ध भी है। इसे 'चीन का उद्यान' कहते हैं। इस की भूमि उर्वरा है और खनिज सम्पत्ति से परिपूर्ण है। विदेशियों की बहुत दिनों से इस पर दृष्टि पड़ रही थी। वह चाहते थे कि किसी बहाने यह सम्पत्ति अपने हाथ लगे, कम से कम इसका लाभ हम उठावें। इसका सबसे सीधा उपाय यह था कि स्ज़ेचुआन में रेल निकाली जाय और उसका प्रबन्ध इन लोगों (विदेशियों) के हाथ में हो। इस बात का इन्होंने भरपूर प्रयत्न किया, पर इनके दुर्भाग्य से उस प्रान्त के लोग समझदार थे। इन लच्छेदार बातों में न आये। हां, उन्होंने स्वयं अपनी

रेल निकाली। रेलके लिये रुपये का संग्रह, जैसा कि षष्ठ अध्याय में दिखलाया गया है, कुछ तो चन्दे से और कुछ कर से हुआ। यह लाइन अर्ध-सर्कारी थी।

इसका प्रबन्ध भी पहिले २ अन्य प्रान्तीय लाइनों की भांति सदोष था। इसका भी बहुत सा द्रव्य कार्य्यकर्ताओं की अकुशलता और बेईमानी से नष्ट हो रहा था, पर धीरे २ स्वतः सुधार हो चला था। शिक्षित समाज जिसमें कई लोग ऐसे भी थे जो विदेशों से शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे, इस ओर ध्यान देने लगा था और आशा थी कि कुछ काल में बिन सर्कारी हस्तक्षेप के भी काम सुधर जायगा।

बीच में यह झगड़ा खड़ा होगया। अन्य प्रान्तों की भांति यहां भी लोगों ने सर्कार की न्याय्य बातों का विरोध किया। इस विरोध को सामान्य प्रजा की ओर से बड़ी पुष्टि मिली। सभी देशों में ऐसा होता है कि सुशिक्षित लोग राजनैतिक समस्याओं को अशिक्षितों की अपेक्षा अधिक समझते हैं और वही राजनैतिक आन्दोलनों के नेता हुआ करते हैं। यूरोपियनों को यह कहने की लतसी पड़ गयी है कि पूर्वीय देश (जैसे चीन, भारत, मिश्र आदि) में सामान्य प्रजा विचारी कुछ नहीं चाहती वह चुपचाप पड़े रहने में ही सन्तुष्ट है पर थोड़े से पढ़े लिखे लोग राजनैतिक आन्दोलन करके सर्कार को भी तंग करते हैं और प्रजा को भी क्षुब्ध करते हैं।

यह इन कहने वालों का झूठा अपवाद है। सभी देशों में नेता प्रायः वही होते हैं जो सुशिक्षित हैं, जिनकी विवेक शक्ति परिमार्जित है, जिनको ऐतिहासिक और राजनैतिक ज्ञान है। पर केवल नेता कुछ नहीं कर सकता। अनुगामी भी चाहिये, और अनुगामी वही होता है जिसको नेता के विचारों के साथ सहानुभूति होती है। अनुचर सूक्ष्म विचार नहीं कर सकता। जिस दिन उस में यह योग्यता आ जायगी उस दिन वह आप ही नेता हो जायगा; पर स्थूल विचार वह भी कर

सकता है; मैं सुखी हूं या दुःखी इतना वह भी समझ सकता है। यदि ऐसा न हो तो दो चार पागलों को छोड़ कर कोई किसी नेता के कहने से अपनी हानि, यहां तक कि प्राणान्त, कराने के लिये अग्रसर न हो।

चीन के सुशिक्षित लोग नेता थे और साधारण लोग उनके अनुगामी थे। इस में सन्देह नहीं कि रेल के बिषय में, जानकर या भूल से नेता लोग अयुक्त बात कर रहे थे पर प्रजा के लिये यह एक उपवार्ता थी। महत्व की बात यह थी कि तत्कालीन चीन सर्कार ठीक नहीं थी। नेताओं का इसी बात पर आग्रह था और प्रजा भी इस बात को समझती थी। कड़े २ टैक्स, आये दिन का अकाल लूट, मार की बढ़ती—इन वातों से यह स्पष्ट था कि सर्कार अपना कर्तव्य-पालन नहीं कर रही थी।

रेलवे विषयक मतभेदने लोगों के बहुत दिनों से दबे हुए भावों को प्रकट होने का एक मार्ग बतला दिया। देखते ही देखते इस विरोधने व्यापक रूप पकड़ा और चीन से मंचूशासन को निकाल कर ही कल लिया।

विरोध का पहिला रूप यह हुआ कि 'चेंगतू रेलवे लीग' नाम की एक समिति खुली। इसका उद्देश्य सर्कार की रेलवे नीति का विरोध करना था।

यह कहना कठिन है कि इस विरोध ने पहिले स्जेचुआन में ही क्यों सिर उठाया। एक मत तो यह है कि स्जेचुआन वाले सचमुच केवल रेल के विषय में ही असन्तुष्ट थे, पीछे से जब यहां झगड़ा आरम्भ हो गया तो राजद्रोहियोंने इस अवसर से लाभ उठा कर इस विरोध को व्यापक कर दिया। दूसरा पक्ष यह है कि स्जेचुआन में जो कुछ हुआ वह सोच विचार कर किया गया था और राजद्रोहियोंने अपने सच्चे उद्देश्य को कुछ काल के लिये छिपाकर यह रेलवे आन्दोलन उठाया था। यह द्वितीय पक्ष ही समीचीन प्रतीत होता है। राजद्रोही

सेनापति के निम्नलिखित शब्दों से इसका समर्थन भी होता है। "On the defeat of the Republican forces at Canton (in May), the military Government was moved to the west and subsequently successfully established in Szechuan" "मई में राजतंत्र की सेनाओं के कैण्टन में हार जाने पर, सैनिक शासन पश्चिम की ओर हटा दिया गया और पीछे से सफलता पूर्वक स्जेचुआन में स्थापित किया गया।"

(मई में इन लोगों ने कैण्टन का सर्कारी शस्त्रागार छीनना चाहा था पर सफल नहीं हुए।)

जो कुछ हो, लोकमत सर्कार के विरुद्ध था, कैबिनेट अर्थात् मंत्रिसभा को जो रूप दिया गया था वह भी सन्तोषजनक नहीं था, इधर स्जेचुआन की प्रान्तीय सभा के सदस्य बड़े ही उत्साही और देशभक्त थे, यह लोग पहिले ही से सर्कार से इस बात पर लड़ रहे थे कि सभा को प्रान्तीय कोष पर अधिकार दिया जाय और वाइसराय आदि बड़े २ कर्म्मचारियों के वेतन कम किये जायँ। रेलवे आन्दोलन के छिड़ते ही सभा ने रेलवे लीग का पक्ष लिया और सम्राट् से प्रार्थना की कि रेलवे लाइनों के विषय में जो नयी नीति निर्धारित की गयी है वह अभी काम में न लायी जाय। तत्कालीन वाइसराय वांग जेन-वाइ भी इन विचारोंसे सहमत थे अतः उन्होंने यह प्रार्थना पेकिंग भेज दी और इसका समर्थन भी किया। पर सुनता कौन, सर्कारी सूत्रधारों की बुद्धि मारी गयी थी। प्रार्थना तो अस्वीकृत हुई ही, उलटे समर्थन करने के कारण वाइसराय पर डाँट पड़ी।

इस सर्कारी आज्ञा का बुरा प्रभाव पड़ा। जनता का क्रोध और भी भड़क उठा। एक समाचारपत्रने इस विषय में लिखा "A coercive measure may succeed for a while, but the heart of the people cannot be won in that way. The people will not tremble and submit to whatso-

over the Throne may indulge in, as they did in-times gone by, without a struggle" 'कुछ कालके लिये बलप्रयोग में सफलता हो सकती है पर इस प्रकार प्रजा का हृदय वशमें नहीं किया जा सकता। अब पहिले की भाँति लोग सम्राट् की प्रत्येक बात के सामने चुपचाप कांप कर सिर नहीं झुकाएँगे।

बात यही थी पर सर्कार अन्धी हो गयी थी। यह अन्धापन स्वेच्छाचारी शासनों का पुराना और अनिवार्य्य रोग है। इस प्रकार के शासन अपने को सैदव सर्वशक्तिमान समझते हैं। इनकी समझ में जनता बच्चों के समान है। कभी रोती है, कभी हँसती है, कभी मुहँ बिगाड़ती है, कभी क्रोध दिखलाती है, पर सचमुच कर कुछ नहीं सकती। जब जी में आया उसे प्रसन्न करने को उसकी दो एक बातें मान लीं, जब जी में आया दो तमाचे लगाकर उसका मुँह बन्द कर दिया। यह इन शासनों की भूल है। जनता तभी तक दुर्बल है जब तक वह अपने को दुर्बल मानती है। जिस दिन वह हनुमान की भाँति अपनी शक्तियों का स्मरण करती है कोई शासन उसका कुछ नहीं कर सकता। पर इतिहास के सहस्र २ बार कहने पर भी स्वेच्छाचारियों की आंख नहीं खुलतीं। वह प्रजा की इच्छाओं को रौंदते चले जाते हैं और मनमुटाव बढ़ाते जाते हैं यहां तक कि जो वैमनस्य आरम्भ में थोड़े से मीठे शब्दों से दूर हो जाता वह पीछे से अमिट हो जाता है। हानि प्रजा की भी होती है पर अधिक हानि और अन्तिम हार शासन की ही होती है। बहुत छेड़ने और सताने से कींचड़ में का कीड़ा भी काटनेका प्रयत्न करता है। मनुष्य तो मनुष्य ही है। उसको निःसहाय, निःशस्त्र, निर्बल, निर्धन, समझ कर निरन्तर दबाये रखने का प्रयत्न करना आग के साथ खेलना है, फ्रांस की राजक्रान्ति, अमेरिका की राजक्रान्ति, रूस की राजक्रान्ति, चीन की राजकान्ति—यह सब इसी बात के प्रमाण हैं।

लीग ने आन्दोलन का काम और उत्साह से करना आरम्भ किया।

उसका प्रत्यक्ष उद्देश्य तो यही था कि लोगों को रेलवे विषयक सच्ची व्यवस्था बतलायी जाय पर भीतर २ वह और राजनैतिक आन्दोलन भी कर रही थी।

अगस्त में प्रान्तीय रेलवे के हिस्सेदारों की एक सभा हुई। इस सभा ने सर्कार से यह प्रार्थना की कि प्रान्तीय रेलवे कम्पनियों का मूलधन (जो अब नयी नीति के अनुसार सर्कार ने ले लिया था) लौटा दिया जाय, लाइनों का प्रबन्ध फिर पूर्ववत् प्रान्तों को सौंप दिया जाय और बाहर से जो ऋण लेने का विचार था वह छोड़ दिया जाय। यह कहना अनावश्यक होगा कि सर्कार ने इनमें से एक बात भी न मानी।

इसके दो चार दिन पीछे लीग ने एक नयी बात निकाली। उसने कहा कि सर्कार ने हमारे रुपये पर ६ सैकड़ा ब्याज देना स्वीकार किया है (षष्ठ अध्याय देखिये) पर न जाने कब देगी, इससे अच्छा यह होगा कि हम लोग ब्याज का द्रव्य आप ही वसूल कर लें। इसका सबसे सुगम उपाय यह है कि भूमि का कर (मालगुज़ारी) सर्कारी कोष में न जाने देकर उसे हम अपने ही हाथ में रखलें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये प्रबन्धकारिणी समितियाँ (Administrative chambers) खोली गयीं। इन समितियों के कार्य्यक्रम के लिये निम्न-लिखित नियम बनाये गयेः--

१ सब कार्यकर्ता अवैतानिक होंगे।

२ यदि निवासियों में से कुछ लोग सर्कार का पक्ष लें तो उनका इस प्रकार विरोध करना होगाः—

(क) उनका नाम और देशहित विरोधी कृत्य प्रकाशित कर।

(ख) समाज में उनको जो २ अधिकार प्राप्त हैं उनको कम कर।

(ग) उनका प्रान्तीय सभा आदिके लिये सदस्योंके चुनाव में सम्मति देनेका जो अधिकार है उसे छीन कर।

(घ) उनके लिये रहना असम्भव बनाकर।

(ङ) यदि उनके प्राण या सम्पत्ति पर कोई आपत्ति आवे तो उनकी किसी प्रकारकी सहायता न कर।

३ यदि सर्कारी कर्मचारी लीगके किसी सदस्यको पकड़ें तो उनका इस प्रकार विरोध किया जायः—

(क) बल पूर्वक प्रतिवाद कर।

(ख) बड़े कर्म्मचारियोंके पास निष्पक्ष जांचकी प्रार्थना कर।

(ग) उस व्यक्तिके अपराधके लिये समस्त लीगको उत्तरदावी घोषित कर।

४ यदि लीगका कोई सदस्य विपद्ग्रस्त हो जाय तो उसकी यों सहायता की जायः—

(क) उसको समुचित धन देकर।

(ख) उसके छुटकारेके लिये प्रयत्न कर।

(ग) उसके कुटुम्बका भरण पोषण कर।

५ यदि लीगके किसी सदस्यकी लीगकी सेवामें मृत्यु हो जाय तो इसका पूरा २ वृत्तान्त प्रकाशित किया जाय और उसका स्मारक इस प्रकार बनाया जायः—

(क) समारोहके साथ उसकी अन्त्येष्टि कर।

(ख) स्थानिक इतिहास में उल्लेख कर।

(ग) कांसेकी मूर्ति बना कर।

(घ) रेलवेके कोषसे उसके कुटुम्बको १००० तेल देकर।

(ङ) उसके भाइयों और लड़कों को शिक्षा दिलवाकर।

इन प्रबन्धकारिणी समितियों के संगठित होते ही, मालगुजारी का देना एकमात्र बन्द हो गया। वाइसराय चाओएर्ह फुंगने हार मानकर पेकिंग में इस विषयकी रिपोर्ट भेजी।

यह स्पष्ट है कि अब बात गम्भीर हो गई। व्याख्यान देना, समाचारपत्रों में लेख लिखना, सभा समिति खोलना और बात है और

इस प्रकार सरकारका विरोध करना, एक प्रधान टैक्स रोक कर उसका स्वतंत्र प्रवन्ध करना, और बात है। ऐसा काम बिना अपने दायित्व को पूरा २ सोंचे नहीं किया जाता क्यों कि ऐसा करना एक प्रकार से स्पष्ट शब्दों में सर्कार को ललकारना है। अभी तक जो कुछ हुआ वह आन्दोलन था; अब विद्रोह की नीव पड़ी। केवल टैक्स का न देना तो विद्रोह नहीं होता—यह तो सत्याग्रह आन्दोलन का भी एक अंग है पर टैक्स का स्वयं एकत्र करना और उसके व्यय आदि का प्रवन्ध करना एक नयी सर्कार स्थापित करना है और विद्रोह का अंग है।

महीना समाप्त होते २ इस आन्दोलन ने और प्रवल रूप धारण किया। व्यापारियों ने हड़ताल करके दूकाने वन्द करदीं; विद्यार्थियों की अनुपस्थिति से पाठशालाएँ बन्द हो गयीं। स्वर्गीय सम्राट् क्वांगह्यू, जिनके राजत्व काल में प्रान्तों को रेलवे सम्बन्धी अधिकार मिले थे, प्रजा के कृतज्ञत भाजन हो गये। स्थान २ पर उनके नाम पर फाटक और कीर्तिस्तम्भ बनाये गये। सामान्य मनुष्य तो इनके नीचे से निकल जाते थे पर सर्कारी कर्म्मचारियों को सवारी पर से उतर कर साष्टांग दण्डवत करनी पड़ती थी। इस दण्डवत् में एक विपत्ति यह थी कि कभी २ लोग पीछे से धौल धप्पड़ भी कर दिया करते थे पर यह बिचारे कुछ कर न सकते थे।

विद्यार्थियों ने आन्दोलन के प्रचार की एक विचित्र युक्ति ढूँढ निकाली उन्होंने एक प्रकार का ‘ जल तार ’ (river telegrams) चलाया। लकड़ी के टुकड़ों पर इस प्रकार के वाक्य “चेंगतू के सब कर्म्मचारी मारे गये। शस्त्र धारण करो। तुम्हारा सर्वनाश करने सेना आरही है” लिखे जाते और यह टुकड़े नदी में छोड़ दिये जाते। यह जहाँ २ किनारे जाकर लगते वहाँ २ के गांव वाले इन समाचारों को पढ़कर सतर्क हो जाते।

यह सब कुछ हुआ पर वाइसराय साहब हाथ पर हाथ रक्खे बैठे

रहे। वह इसे भी लड़कों का खेल ही समझते रहे। उनको विश्वास था कि चार दिन में लोगों का उत्साह आप ही ठण्डा हो जायगा। पर चीन की प्रधान सर्कार को इस प्रकार का भ्रम नहीं था। वह देख रही थी कि धीरे २ और प्रान्तों में भी अशान्ति बढ़ रही थी और यदि स्जेचुआन की आग शीघ्र न बुझी तो सारा देश बल उठेगा। अतः उसने वाइसराय को आज्ञा दी कि प्रान्तीय सभा के सभापति और उपसभापति पू तिएन-चुन और लो-हुन पकड़ कर मार डाले जायँ। वाइसराय ने पहिले तो इस आज्ञा का पालन कुछ दिनों तक टाला पर पीछे से उनकी समझ में भी यह बात आ गयी कि अधिक देर करना हानि-कारक होगा। उन्होंने देखा कि बिना कड़ाई के काम न चलेगा। चुपके २ पुलिस का प्रबन्ध ठीक किया गया और लीग के कई रहस्यों का पता लगा लिया गया।

७ सितम्बर को लीग की एक सभा थी। सभा के समय सदस्योंके नाम वाइसराय का एक पत्र आया था। उसमें लिखा था कि यदि आप लोग कृपा करके यामन (वाइसराय का निवासस्थान) तक चले आवें तो सब बातों पर विचार हो जाय और विवाद बन्द हो जाय। यह लोग बात में आ गये और वहां चले गये। बस जाने की देर थी। सब के सब लोग पकड़ लिये गये। एक घण्टा बजाया गया। उसको सुनते ही सारी सड़कों पर सिपाही भर गये।

जब नगरवासियों को इस बात की सूचना मिली तो यामेन के सामने भीड़ लग गयी। लोगों ने कहा कि हमारे नेताओं को छोड़ दीजिये, हम आन्दोलन बन्द किये देते हैं पर वाइसराय साहब के मस्तिष्क में तो विजय का मद चढ़ रहा था। सिपाहियों ने बन्दूकें चलाईं और सवारों ने भीड़ के बीच में घोड़े चलाये। लगभग १५ मनुष्य हताहत हुए। गत सम्राट् के नाम पर जो फाटक बने थे वह तोड़ दिये गये। यह घोषणा की गयी कि लीग तोड़ दी गयी है और उसके प्रधान नेता कैद कर लिये

गये हैं। व्यापारियों को तत्काल हड़ताल वन्द करके पूर्ववत् सब काम करना होगा।

नगरवासी बिचारे भी डर गये थे, उन्होंने इन सब आज्ञाओं को चुपचाप मान लिया। दूकानें खुल गयीं, सब काम धंधे होने लगे, लीग या रेलवे आन्दोलनका लोप ही हो गया। वाइसराय के हर्ष का क्या ठिकाना था। सैनिकों का राज था। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रजा का दुःसाहस सदा के लिये कुचल दिया गया। वाइसराय साहब ने एक बहुत लम्बी चौड़ी रिपोर्ट पेकिंग भेजी उस में लिखा गया कि विद्रोहियों से सात दिन और सात रात तक घमाशान लड़ाई हुई अन्त में ७ सितम्बर को (जिस दिन नेता पकड़ गये थे) उनकी पूरी हार हुई! इस सरासर झूठी रिपोर्ट में और भी न जाने कितनी बातें नमक मिर्च लगा कर लिखी गयी थीं जिन से कि यह प्रतीत हो कि एक बड़ा भारी विद्रोह दमन किया गया है।

इधर वाइसराय साहब तो अपने आप को प्रशंसापत्र दे रहे थे। उधर विद्यार्थियों ने जाकर ग्रामीणों को उभारा। चीन में ही क्या, सभी देशों में देखा गया है कि ऐसे आन्दोलनों में विद्यार्थी ही अग्रसर होते हैं उनके शरीर में बल, मस्तिष्क में स्फूर्ति, हृदय में उत्साह होता है बड़े होने पर मनुष्य गृहस्थी के झगड़ों में पड़ कर जकड़ जाता है। उसका स्वातंत्र्य जाता रहता है, विद्यार्थी स्वतंत्र और निर्भय, निरपेक्ष और निर्द्वन्द्व होता है। वह आदर्शों और सिद्धान्तों के लिये प्राण निछावर करना साधारण बात समझता है। जिन लोगों के हृदय उदार उत्साहों से शून्य हैं वह विद्यार्थियों को 'स्वप्नद्रष्टा' कहते हैं सम्भव है विद्यार्थी स्वप्न ही देखता हो पर वह बहुधा अपने स्वप्नोंका सच्चा और प्रत्यक्ष कर दिखाता है वह उन लोगों से कहीं श्रेष्ठ है जिनके मृत हृदयों में अपनी २ दो कौड़ी की खालों की रक्षा से बड़ा या ऊँचा विचार कभी घर करने ही नहीं पाता।

विद्यार्थियों के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि दो चार दिनों के

भीतर ही सहास्रों ग्रामीणों ने आकर नगर को घेरा लिया। सिपाहियों का सामना करने की सामर्थ्य तो इनमें थी नहीं। जब २ लड़ाई होती विचारे बुरी तरह हारते थे पर इनका साहस प्रशंसनीय था। जितनी ही इनकी हार होती उतना ही इनका उत्साह और बढ़ता था। शहीदों का रक्त ही धर्म्म की पुष्टि करता है। इन ग्रामीणों से और चाहे कुछ न बन पड़ा पर इन्होंने नगर को चारों ओर से घेर लिया। देखा देखी एक ज़िले से दूसरे ज़िले जाते २ सारे प्रान्त में विद्रोह फैल गया। केवल प्रान्तीय राजधानी चेंगतू में सर्कारी शासन की कुछ सत्ता प्रतीत होती थी--वह भी ऊपरी, वास्तविक नहीं। बहुत से सर्कारी सिपाही विद्रोही दल से जा मिले। इससे सर्कारी पक्ष और दुर्बल पड़ गया क्योंकि वाइसराय आदि बड़े कर्म्मचारी इस बात का ठीक २ निश्चय नहीं कर सकते थे कि कौन उनका सहायक था और कौन गुप्त शत्रु।

इधर विद्रोहियों का मार्ग भी निष्कण्टक नहीं था। बहुत से डाकू और लुटेरे, जिनका राजनीतिक बातोंसे कोई सम्बन्ध नहीं था, इस अशा-न्तावस्था से लाभ उठाकर प्रजा को सता रहे थे। यदि इनसे भी विरोध कर लिया जाता तो सर्कार का पक्ष प्रबल हो जाता। अतः इनको मिलाये रखने का प्रयत्न करना पड़ता था। साथ ही यह भी देखना होता था कि यह प्रजा के साथ उत्पात न करके अपनी सारी शक्ति सर्कार के विरुद्ध ही लगावें। दूसरी कठिनाई यह थी कि इनके पास न तो धन था न कोई युद्ध-सामग्री थी, धन तो इन्होंने मालगुज़ारी जमा कर २ एकत्र कर लिया और इस रुपये से कुछ शस्त्र भी मोल लिये गये पर शस्त्र बेचने वाला कौन था। जो शस्त्र स्वयं वहां बन जाते थे उनसे ही काम लेना पड़ता था और यह सामान्य लोहारों के हाथ के बनाये शस्त्र सर्कारी तोपों का भला क्या सामना करते।

पर इन लोगों के पास वह शस्त्र था जो सबसे अमूल्य है, जिसके होने से और सब शस्त्र आप से आप ही इकट्ठे हो जाते हैं, उस शस्त्र का नाम

है सच्चा देशप्रेम, निर्भयता, उत्साह, धैर्य्य, इस अनुपम शस्त्र के अंग हैं, देशप्रेम निःशस्त्र के बल को शतगुण कर देता है और शत्रु के बल को कुण्ठित कर देता है, सब से पहिली विद्रोही सेना का वर्णन पढ़ कर आश्चर्य्य होता है। उसके ५ विभाग थे :–

(१) आफ़िसर–यह लोग प्रायः खाकी वर्दी में थे।

(२) ऐसे सिपाही जिनके पास बर्छे और तलवारें थीं।

(३) ऐसे सिपाही जिनके पास एयर गन (बच्चों के खेलने योग्य हवाई बन्दूकें) या बर्ड गन थीं (चिड़ियों के मारने की बन्दूक को बर्ड गन कहते हैं)

(४) ऐसे सिपाही जिनके पास केवल झण्डियाँ थीं। (धन्य वीरो!)

(५) तोपख़ाना।

यह तोपखाना भी विचित्र था, इसमें तीन तरह की तोपें थीं, कुछ पुरानी तोपें तो इधर उधर के नगरों से उठा लायी गयी थीं और कुछ मन्दिरों के बड़े घण्टों और धूप कुण्डों (चीन में बहुत से मठ मन्दिरों में धूप देने के लिये बड़े २ धातु के कुण्ड होते हैं) को गला कर ढाल ली गयी थीं, तीसरे प्रकार की तोपें सब से आश्चर्य्य-जनक थीं। बड़े २ पेड़ों के तने बीच से खोखले कर दिये जाते थे और इन पर तोड़ २ कर सर्कारी तार लपेट दिये जाते थे। बस यह लकड़ी की नलियाँ तोपों का काम देती थीं!

जहाँ ऐसी देशभक्ति हो कि लोग हाथ में झण्डियाँ लेकर सेनाओं का सामना करें वहाँ विजयप्राप्ति में क्या सन्देह हो सकता है? चीन सर्कार की महती सैनिक शक्ति इन वीरों के हृदयों को दीप्तिमान् करने वाली दैवी शक्ति के सामने तुच्छ थी। सच्चा बल हृदय में रहता है, हाथ में नहीं; विजय सच्चे आदर्शों की होती है, तोपों की नहीं जैसा कि एक कवि ने कहा है :–

हस्ती स्थूल तनुः स चांकुशवशः, किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो ।
वज्रेणाभिहता पतन्ति गिरयः, किं शैलमात्रः पविः ॥
दीपे प्रज्वलिते विनश्यति तमः, किं दीपमात्रं तमः ।
तेजो यस्य विराजते स बलवान्स्यूलेषु कः प्रत्ययः ॥

[यद्यपि अंकुश हाथी से छोटा होता है पर बड़ा हाथी उसके वश में रहता है, यद्यपि वज्र पहाड़ से छोटा होता है पर वज्र की चोट खाकर पहाड़ गिर जाता है, यद्यपि दीपक का परिमाण अन्धेरे से छोटा होता है पर अन्धेरा दीपक के जलते ही नाश हो जाता है; बड़े होने से क्या होता है, जिसमें तेज है वही बलवान् है]

जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं वाइसराय ने पहिले तो झूठी रिपोर्ट पेकिंग भेज दी पर सच को कोई कब तक छिपा सकता है। शीघ्र ही समाचार पेकिंग पहुँचा। सर्कार ने तुरन्त ही मञ्चू सेनापति तुआनफंग को, जो उस समय ४,००० सिपाहियों के साथ ईचंग में थे, चंगतू जाने की आज्ञा दी। यह बिचारे थोड़ी ही दूर जा पाये थे कि वूचंग में बलवा हो गया (इसका वृत्तान्त आगे आएगा) अब यह दो विपत्तियों के बीच पड़े—एक ओर तो वूचंग, दूसरी ओर चंगतू। चुंग किआंग जाकर इन्होंने पड़ाव किया। वहाँ के प्रधान २ नागरिकों ने, जो वस्तुतः सभी विद्रोही पक्ष के थे, इनको समझाया कि आपकी सेना के यहाँ रहने से नगर में अशान्ति बढ़ेगी। यह उनकी बात मान गये। बस इनका वहाँ से कूच करना था कि चुंगकिआंग में भी बलवा कर दिया गया।

अब यह सेनापति बड़े घबराये, जिधर देखिये उधर ही विद्रोह था। अन्त में इन्होंने यह निश्चित किया कि इस समय लड़ने की अपेक्षा पेकिंग जाना श्रेष्ठतर है, पर पेकिंग जायँ किधर से ? मार्ग में कई विद्रोही नगर पड़ते थे, जिनके निकट जानेसे लड़ना ही पड़ता। अतः इन्होंने एक बहुत टेढ़ा रास्ता सोचा जो बहुत घूम फिर कर पेकिंग पहुँचता था। पर अब इनके सिपाही, जिनमें अधिकांश चीनी थे, अड़ गये। उन्होंने आगे

बढ़ना अस्वीकार कर दिया। तब तुंग ने भेष बदल कर भाग जाने का प्रयत्न किया पर पहिचान लिये गये। १२ सिपाहियों ने उनका पीछा किया उनसे कहा गया कि शस्त्र रख कर क्षमा मांगो पर वह वीर पुरुष थे अकेले होने पर भी उन्होंने उन बारहोंका सामना किया और लड़ कर मारे गये।

यह घटना २७ नवम्बर की है उसी दिन स्जेचुआन प्रान्त की राजधानी चंगतूमें प्रजातंत्र की स्थापना की घोषणा की गयी।

बात यह हुई कि वाइसराय साहब समझते थे कि धाँधली से काम चल जायगा पर जब उन्होंने देखा कि अब प्रजापक्ष का बल बहुत बढ़ गयी है तो नेताओं से परामर्श करके अपना पद त्याग दिया। नेताओं ने भी उनके साथ कोई कुव्यवहार नहीं किया। उनको आदर के साथ रक्खा और अधिकारों के छिन जाने पर भी उन से बराबर परामर्श लेते रहे। पर उन्होंने विश्वासघात किया। नगर में आग लगा कर भाग जाने के अपराध पर पकड़े गये और दोष के प्रमाणित होने पर उनको फाँसी दी गयी।

जब चीन सर्कार को इन सब घटनाओं की सूचना मिली तो वह बहुत घबराई। ऐसे अवसर पर कोई कर्म्मचारी ही दोषी ठहराया जाता है। चीन सर्कार ने रेलतार आदि विभाग के मंत्री, शैंग हंसुआन-हुआइ को दोषी ठहरा कर निकाल दिया। इतना ही नहीं, यदि, अँग्रेज और अमेरिकन राजदूत बीच में न पड़ते तो बिचारा हुआइ अपनी कृतघ्न सर्कार की आज्ञा से मार ही डाला जाता।

अष्टम अध्याय।

विद्रोहियों का संगठन।

स्जेचुआन के पीछे हैंकाउ में बलबा हुआ। जब तक विद्रोह की आग स्जेचुआन तक परिमित थी तब तक लोग यह समझते थे कि यह सब प्रान्तीय आन्दोलन है जो धीरे धीरे आप ही शान्त हो जायगा। पर हैंकाउ के पीछे यह आशा जाती रही। हैंकाउ ने आन्दोलन के सच्चे रूप और उसकी व्यापकताको निर्विवाद कर दिया। इस पिछले बलवे में एक विशेषता थी। स्जेचुआन में रेलवे के सम्बन्ध में कुछ दिन से वाद विवाद चला आ रहा था इससे वहां झगड़े की आशंका की जा सकती थी। हैंकाउ (या हूये प्रान्त में जिसकी वह राजधानी है) में किसी प्रकार की प्रत्यक्ष आन्दोलन नहीं था। इस अवस्था को देख कर अंगरेजी राजदूत सर राबर्ट हार्ट ऐसे अनुभवी मनुष्य कहते थे कि चीन को जागृत होने के लिये कम से कम सौ वर्ष चाहिये।

यकायक यह सब कल्पनाएँ हवा हो गईं। ९ अक्तूबर को हैंकाउ नगर के उस भाग में के एक घर में जिस में कि रूसी रहते थे, बारूद में आग लगने का सा शब्द हुआ। पुलिस ने जो जाँच की तो देखा कि वह घर क्या था बम बनाने का कारखाना था। बहुत से कागज भी पाये गये परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोग पकड़े गये और इन में से कइयों को फाँसी दी गयी। वाइसराय जुईचेंग फूल उठे उनके पास उस समय दो सेनापति थे। चंग पियाओ के नीचे १२,३६४ और लियुआनहुंग के नीचे ५१३२४ सैनिक थे।

जिन लोगों को फांसी दी गयी थी उन में कुछ सिपाही भी थे। इस का परिणाम यह हुआ कि सिपाहियों ने बलवा कर दिया। वाइसराय तो भाग गये और सेनापति लियुआन-हुंग स्वयं प्रजापक्ष से मिल गये। ४८ घण्टों के भीतर २ इन लोगों ने वूचंग ले लिया और कुछ ही पीछे हैंकाउ भी इनके हाथ में आ गया। सर्कारी सेना हार कर भाग गयी। बहुत से सैनिक जनरल हुंग से आ मिले, कहा जाता है कि उस दिन हैंकाउ में आबालवृद्ध जितने मञ्चू मिले सब मार डाले गये, वाइसराय का महल जला दिया गया।

हैंकाउ में एक सर्कारी शस्त्रागार था। कुछ लोगों ने वहाँ जाकर यह कहा कि हम लोग सर्कार के पक्ष के हैं और विद्रोहियों द्वारा सताये हुए हैं। हमको शरण दी जाय। शस्त्रागार के अफसर ने इनको भीतर ले लिया। वहाँ पहुँचते ही इन्होंने अपने अधिकार जमा लिये। शस्त्रागार में इनको बहुत से शस्त्र और शस्त्र ढालने के यंत्र हाथ लगे।

इन बातों ने पेकिंग को घबरा दिया। नित्य नयी नयी घोषणाएं निकलने लगीं। कभी किसी वाइसराय, कभी किसी सेनापति को दोषी ठहराया जाता पर इन बातोंसे क्या होना था। इस अवसर पर सर्कार को युआनशिहकाइ की स्मृति आयी। युआन बुलाये गये पर वह आने पर सम्मत न हुए। उनको निकालते समय उनके पाँव में रोग बतलाया गया था। उन्होंने लिख भेजा कि जिस पीड़ा के कारण मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी थी वह अभी अच्छी नहीं हुई। गवर्नमेण्टने लिखा कि अपना पाँव तत्काल अच्छा करके अभी पेकिंग चले आवो। उन्होंने लिख भेजा कि मैं क्या करूं, मेरा पाँव अच्छा ही नहीं होता। साथ ही उन्होंने कुछ शर्तें भी लिख भेजीं जिनके स्वीकृत होने पर उनके स्वस्थ होनेकी सम्भावना थी। गवर्नमेण्ट बड़ी आपत्ति में पड़ी। इसी घबराहट के समय एकायक कई बंकों का दिवाला धड़ाधड़ निकल गया जिससे और अशान्ति फैली।

इधर विद्रोहियोंका बल बढ़ता ही जाता था। जनरल लि युआन-हुंग

के पास २५,००० सुशिक्षित और सु-सज्जित सैनिक थे । नये रंगरूट नित्य भरती होते जाते थे । सर्कारी सिपाहियों की वर्दी खाकी थी । इन लोगों ने काली वर्दी धारण की । इनकी भरिडयों पर यह शब्द लिखे रहते थे—'ह्सिन हन, माइह मन ।' इनका अर्थ है 'नवीन हन राजवंश' मञ्चुओं को मारो ।' [यह हम पुस्तक के आरम्भ में ही लिख आये हैं कि चीनी अपने को हन (या हान) की सन्तान कहते हैं] उस समय चीन में एक गान का बड़ा प्रचार हो गया था । उसमें 'स्वतंत्रता' को आह्वान किया गया है । उसके कुछ अंशोंका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

स्वतंत्रते, स्वर्ग की श्रेष्ठतम दिव्य वस्तु
शान्तिके साथ मिल कर तुम इस पृथ्वी पर करोगी
सहस्रों विचित्र नये काम ।
आकाश तक पहुँच कर
बादलों का रथ और वायु का घोड़ा बनाकर
आओ, आओ, पृथ्वी पर राज करने के लिये ।
हमारे दासत्व के अँधेरे नरक के नाम पर
आओ, हमको अपने प्रकाश के एक किरण से प्रकाशित करो ।
दिन को अपने विचारों में, रात को अपने स्वप्नों में
मैं अपनी पितृभूमि के दुःखों को देखता हूँ,
परन्तु स्वतंत्रता का चञ्चल स्वभाव
मुझे उसकी प्राप्तिसे रोकता है ।
हा शोक मेरे भाई सभी दास हैं ।
हा शोक स्वतंत्रता मर गयी:
सर्वश्रेष्ठ एशिया कुछ नहीं है
सिवाय एक विस्तृत मरुभूमि के ।

इसी अवसर पर विद्रोही नेताओं ने निम्न घोषणा निकाली थी :—

"All the Han brothers should know that the rising by the revolutionists is for the salvation of the people and the punishment of the guilty. The Manchu government has been tyrranical, cruel, insane, unconscious, inflicting heavy taxation and stripping the people of their marrow. It will not give relief to the starving all over the plains. It is exhausting the blood of the people in order to build and ornament palaces and parks. Therefore all our brethren should understand their duties and help the revolutionary army in the extirpation of such barbarous aliens. The Heavenbestowed duty of every citizen with its responsibilities is un-shirkable and that is, without the least doubt, to sweep away and extingiush what injures the people. To-day's opportunity is bestowed on us by the great Heaven ; if we do not seize and make use of it, until what time shall we wait then ?"

"सब हन भाइयों (अर्थात् चीनियों) को जानना चाहिये कि राजक्रान्तियों का उठना (या विद्रोह) जनता के उद्धार और अपराधियों को दण्ड देने के लिये हुआ है। मन्चू शासन प्रजा पीड़क, क्रूर, पागल और बुद्धिहीन रहा है। उसने लोगों पर कड़े कड़े टैक्स लगाये हैं और लोगों का सार निचोड़ लिया है। जो लोग सारे देश में भूखे मर रहे हैं उनको सहायता नहीं दी जाती। महलों और उद्यानों के बनाने और सजाने में लोगों की सत्ता नष्ट की जा रही है।

इस लिये हमारे सब भाइयोंको चाहिये कि अपने कर्तव्योंको समझें और राजकान्ति सेनाको ऐसे असभ्य विदेशियों का नाश करने में सहायता दें। प्रत्येक मनुष्य का ईश्वर-निर्दिष्ट कर्तव्य और दायित्व अमिट है। वह कर्तव्य यह है कि जो वस्तु जनता को हानि पहुंचा रही है उसे दूर बहा दिया जाय और मिट्टी में मिला दिया जाय। आज का अवसर हम को ईश्वर ने दिया है ; यदि हम ने इसका सदुपयोग न किया तो फिर कब तक बैठे प्रतीक्षा करते रहेंगे ?"

इस प्रकार के उत्तेजक वाक्यों से प्रजा का उत्साह बढ़ता जाता था। विद्रोहियों का संगठन दिन दिन सुदृढ़ होता जाता था। उनके सैनिकों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। अब उनके पास काम चलाने के योग्य अस्त्र भी हो गये थे और बनते चले जा रहे थे। इतनी बड़ी सेना के खाने पहिनने के लिये धन की आवश्यकता थी। उसका भी प्रबन्ध होता जाता था। जो नगर इन के वश में आते जाते थे उन के सर्कारी कोषों और टैक्सों से कुछ द्रव्य तो मिलता ही था। हैङ्काउ की टकसाल से २० लाख तेल मिले थे। प्रजा आप सहर्ष चन्दे देती थी। इसके अतिरिक्त जो चीनी विदेशों में बसे हुए थे वह बराबर द्रव्य भेजते थे। अतः देखते ही देखते इनका संगठन इतना सुदृढ़ हो गया कि चीन सर्कार इनको सुगमता से दमन नहीं कर सकती थी। दूसरी शक्ति इन के पास नैतिक थी। विद्रोही दल के सेनापति से लेकर सिपाही तक सभी उत्साह से भरे थे और प्रजा की उन के साथ सहानुभूति थी। सर्कारी सेनाओं में किसी को सच्चा उत्साह नहीं था। अनीति के लिये स्थायी उत्साह होना कठिन है। प्रजा भी या तो सर्कार की विरोधी थी या कम से कम उदासीन थी।

चीन सर्कार के अतिरिक्त इन लोगों को एक और सम्भवशत्रु की ओर ध्यान रखना पड़ता था। यदि इस झगड़े लड़ाई में दो चार यूरोपियन या दस बीस ईसाई मारे जाते, इन लोगोंके घर मकान लूट जाते

या इनको अन्य किसी प्रकार की क्षति पहुँचती तो यूरोपियन राष्ट्र झट बीच में कूद पड़ते और चीनकी अस्थिर दशा से कुलाभ उठाना चाहते। यह बात इन विद्रोहियों को कदापि अभीष्ट न थी, इस लिये इन्होंने इसका बड़ा कड़ा प्रबन्ध किया कि चाहे जो कुछ हो जाय किसी यूरोपियन, अमेरिकन या जापानी को किसी प्रकार की शारीरिक या आर्थिक हानि न पहुँचने पावे।

नवम अध्याय

बिप्लवकी वृद्धि

जो उत्साह जनता विद्रोहपक्ष में दिखला रही थी और जो प्रबन्ध विद्रोही कर रहे थे उनसे स्पष्ट था कि इस आन्दोलन का शीघ्र दबना कठिन ही नहीं असम्भव था। उत्साहके नित्य नये उदाहरण मिलते थे। अगस्त में विद्रोह आरम्भ हुआ, अक्टूबर बीतने के पहिले अकेले दक्षिण अमेरिका प्रवासी चीनियों ने १० लाख पौंड अर्थात् डेढ़ करोड़ रुपया भेजा। मामूली नौकरी करने वालों ने यथाशक्य द्रव्य दान किया। अँग्रेजी काउन्सिल के नौकर ने अपना दो मास का वेतन दे दिया। यदि जनरल ली या अन्य विद्रोही जनरल खानें कपड़े शस्त्र आदिका प्रबन्ध कर सकते तो उनको लाखों रंगरूट मिलते। पर अब वह थोड़े ही सिपाही भरती करते थे। बात यह थी अब उनको सन्नद्ध सर्कारी सेनाओं का सामना करना था। इस काम के लिये अच्छी भाँति सुशिक्षित और सुसज्जित सिपाहियों की आवश्यकता थी, अधकचरे रंगरूटों की भीड़ की नहीं। दूसरे, इनका यह भी प्रयत्न था कि लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो। इनके पास सर्कारके बराबर द्रव्य तो था ही नहीं, फिर न जाने क्या राजनैतिक अड़चनें उत्पन्न हो जायँ; चीन सर्कार किसी विदेशी राष्ट्र से सहायता मांग ले या कोई विदेशी राष्ट्र आप ही किसी बहाने बीच में कूद पड़े या देश में ही अदम्य अराजकता, लूटमार, डकैती आदि फैल जाय। इस लिये जितनी जल्दी लड़ाई समाप्त हो उतना ही अच्छा था। इस काम के लिये भी छोटी छोटी परन्तु सुसंगठित सेनाओं की आवश्यकता थी, भारी भीड़ों की नहीं।

हम पहिले लिख आये हैं कि इनको विदेशियों की ओर से खटका लगा रहता था। जब किसी देश में इस प्रकारकी राजक्रान्ति होती है तो क्रान्तिकर नेताओं (या विद्रोहियों) को विदेशियों के विषय में कई प्रकार के प्रबन्ध करने पड़ते हैं। प्रायः नियम यही है कि कोई देश दूसरे देशों के भीतरी प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करता। इस लिये जब तक राजक्रान्ति होती रहती है कोई नहीं बोलता। देशवासियों को अधिकार है कि अपने यहां जैसा शासन चाहे रक्खें उनकी इच्छा हो तो प्रजातन्त्र करलें, नहीं किसी राजा के अधीन रहें। परन्तु विदेशी राष्ट्रों की दृष्टि सदैव क्रान्तिकरों पर लगी रहती है। उनको यह चिन्ता रहती है कि यह नया शासन न जाने कैसा होगा। पुराने शासन ने जो सन्धियाँ की हैं उनका पालन होगा या नहीं; पुराने शासन ने जो ऋण लिया है वह चुकाया जायगा या नहीं। यदि नया शासन कह दे कि हम पुराने शासन की सन्धियों या ऋणों को नहीं मानते तो परराष्ट्रों को बीच में पड़ने का अवसर मिलता है। अभी रूस में ऐसा हुआ है। नये बोलशेविक शासन ने कह दिया है कि हम पुरानी रूसी गवर्नमेण्ट की सन्धियों से बद्ध नहीं हैं न हम उनके ऋणों को चुकावेंगे। इस से इंगलैण्ड, फ्रांस, अमेरिका, सभी घबरा गये हैं क्योंकि उनका करोड़ों रुपया डूबना चाहता है।

अस्तु, जो नया शासन ऐसा अन्धेर नहीं करना चाहता वह स्पष्टतया घोषित कर देता है कि पुरानी सन्धियोंका पालन होगा और परराष्ट्रों के साथ वैसा ही व्यवहार होगा जैसा कि पुराना शासन करता था। फिर परराष्ट्रों को बीच में पड़ने का कोई अवकाश नहीं रह जाता। इस घोषणा के पीछे नया शासन प्रधान २ परराष्ट्रों से 'अंगीकृति' (reccognition) की प्रार्थना करता है, अर्थात् उनसे यह प्रार्थना करता है कि वह इस बात को अंगकीर कर लें कि अब उस देश विशेष में पुराने शासन के स्थान में यह नया शासन स्थापित हो गया है और इसके वही सब अधिकार हैं जो पुराने शासन को थे।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए जनरल ली युआन–हुंग ने १२ अक्तूबर को एक विज्ञप्ति निकाली। इस में उन्होंने अपने को 'चीन के प्रजातंत्र के सैनिक शासन की हूपे की सेना का प्रधान सेनापति' (Commander-in–chief of the army of Hupeh of the military government of the Republic of China) लिखा। (हूपे उस प्रान्त का नाम है जिस में हैंकाउ आदि नगर हैं)। इस विज्ञप्ति में पहिले भूमिका रूप से यह लिखा गया कि अभी तक चीनी प्रजातंत्रपक्ष के पास कोई ऐसा प्रदेश नहीं था जिस पर उसका पूरा राज हो इस लिये विदेशी राष्ट्र उसको अँगीकार नहीं कर सकते थे पर अब सारा स्ज़ेचुआन प्रान्त उसके अधिकार में हो गया है अतः विदेशी राष्ट्रों को चाहिये कि उसको अँगीकार कर लें। इस के पीछे नये शासन की विदेशियों के प्रति जो भावी नीति थी उस का सात धाराओं में इस प्रकार उल्लेख किया गया:—

(i) All treaties contracted by foreign powers with the Imperial Government will continue to be observed.

(ii) All property of the subjects of foreign powers situated within the territory occupied by the militrary government will be recognised and protected.

(iii) All privileges already granted to foreign powers will also be recognised and protected.

(iv) All payments due from the various provinces on account of indemnities or loans will be made in full at the proper dates as hitherto.

(v) All munitions of war supplied by any

foreign power for the assistance of the Imperial government will be confiscated,

(vi) Any foreign power assisting the Imperial government to resist the military government will be regarded as an enemy.

(vii) No treaties whatsoever made subsequent to the date of this notification between foreign powers and the Imperial government will be recognised by the Military government.

भावार्थ

(१) परराष्ट्रों ने साम्राज्य सर्कार के साथ जो सन्धियाँ की हैं उन सब का पालन होगा।

(२) सैनिक शासन के अधिकार में जो प्रदेश होंगे उनमें विदेशी राष्ट्रों की प्रजाओं की जो कुछ सम्पत्ति होगी उसकी रक्षा की जायगी।

(३) भिन्न २ प्रान्तों से युद्धदण्ड या ऋण आदि का जो कुछ द्रव्य परराष्ट्रों को मिलना चाहिये वह नियमित तिथियों पर पूर्ववत् पूरा चुका दिया जायगा।

(४) यदि कोई परराष्ट्र साम्राज्य सर्कार की सहायता के लिये किसी प्रकार की युद्धसामग्री देगा तो वह जब्त कर ली जायगी।

(५) यदि कोई परराष्ट्र साम्राज्य सर्कार को सैनिक सर्कार का विरोध करने में सहायता देगा तो वह शत्रु समझा जायगा।

(६) परराष्ट्रों को जो कुछ अधिकार मिल चुके हैं वह सुरक्षित रहेंगे।

(७) यदि इस विज्ञप्ति की तिथि के पीछे साम्राज्य सर्कार और किसी परराष्ट्र में कोई सन्धि हुई तो सैनिक सर्कार उसे न मानेगी।

[वक्तव्य—ऊपर 'सम्राट् की सर्कार' के लिये 'साम्राज्य सर्कार' पद आया है। विद्रोही शासन अपने को 'सैनिक शासन' या 'सैनिक

सर्कार' कहता था इसका कारण यह था कि यद्यपि चीनमें प्रजातंत्र की घोषणा कर दी गयी थी पर इस प्रजातंत्र का अभी तक एक ही अँग, अर्थात् सेना संगठित हो पाया था । सेना ही प्रजातंत्र के नाम से शासन कर रही थी । अतः इस शासन को सैनिक शासन कहना उचित ही था ।]

इस विज्ञप्ति ने सैनिक शासन की नीति को इतने स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित कर दिया और यह नीति स्वयं इतनी न्याय्य थी कि अब किसी विदेशी राष्ट्र को कुछ कहने का अवकाश ही नहीं रहा ।

विदेशियों से छुट्टी पाकर जनरल ली और उनके साथियों को घरेलू अराजकता को रोकना पड़ा । सभी देशों में इस प्रकार के गुण्डे बदमाश होते हैं जो इस प्रकार के विप्लव की प्रतीक्षा करते रहते हैं । इन लोगों की बन आई लोगों को, विशेषतः मन्चुओं को, लूटने मारने का अच्छा अवसर हाथ लगा । मन्चुओं का तो बनैले पशुओं की भाँति शिकार होता था पर वैप्लविक नेताओं ने यथासम्भव इस को भी रोका । बड़ी कड़ाई से न्याय होता था । जो कोई अत्याचार करता पकड़ा जाता उसका सिर काट लिया जाता ।

इधर चीन सरकार बड़ी कठिनाई में थी स्जेचुआन और हूपे दो दो प्रान्तों में एक साथ ही विप्लव होने से सेना आदि का उपयुक्त प्रबन्ध करना कठिन हो रहा था । सर्कारी प्रधान सेनाध्यक्ष जनरल पिन चांग हैंका-उसे ६५ कोस दूर थे, पर जनरल चांग पिआओं ने ३० अक्टूबर को विद्रोहियों का सामना किया । ऐडमिरल साह भी अपनी जहाज़ों के साथ उनकी सहायता के लिये तत्पर थे फिर भी सर्कारी सिपाहियों की हार ही हुई ।

जीत के समय ही मनुष्य की उदारता की परीक्षा होती है । हमारे विद्रोही इस परीक्षा में पूर्णतया उत्तीर्ण हुए । उन्होंने आहत शत्रुओं के साथ बहुत ही अच्छा बर्ताव किया और क़ैदियों के साथ भी किसी प्रकार की क्रूरता न होने दी । बहुत कुछ हर्ष भी नहीं मनाया गया । केवल विदे-

शी काउन्सिलों के पास औपचारिक सूचनाएँ भेज दी गयीं। इसके पीछे ही हूपे में प्रजातंत्र की घोषणा कर दी गयी।

इन सूचनाओं और पत्रों को पाकर विदेशी कान्सल बड़े द्विविध में पड़ते थे। यह पत्र 'चीनी प्रजातन्त्र' या 'सैनिक शासन' की ओर से भेजे जाते थे पर अभी तक किसी विदेशी राष्ट्र ने इस शासन को अंगीकृत नहीं किया था। यदि उत्तर न दिया जाय तो अपमान होता था और उनका बल इतना बढ़ गया था कि अपमान करना ठीक न होता। यदि उत्तर दिया जाय तो किस के नाम, क्योंकि बिना अपनी सर्कारों की आज्ञा के कान्सल लोग इस नये शासन को अंगीकृत कर नहीं सकते थे। अतः सोच विचार कर उत्तर तो दिये जाते थे पर गोल शब्दों में और प्रजातंत्र के नाम नहीं वरन् आये हुये पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के नाम।

जब वैप्लविकों के वूहन (वूचंग, हन्यंग, हंकाउ) में विजय प्राप्त करनेका समाचार देश में फैला तो विद्रोह की आग चारों ओर फूट पड़ी। शीघ्र ही सर्कार की नयी सेना, लू-चुन, जो बड़े व्यय और परिश्रम से सन्नद्ध की गयी थी, बिगड़ गयी और उसके बहुत से सिपाही विद्रोही दल में जा मिले।

२१ अक्तूबर को ईचांग और इसके दो एक ही दिन के भीतर कुइ-किआंग और चांगशा विद्रोही शासन में चले गये। चांगशा के सूबेदार ने कुछ विरोध करने का प्रयत्न किया पर उसे अपने प्राणों से ही हाथ धोना पड़ा। इस नगर में विद्रोही सेना को २०,००० नये सिपाही मिले।

२५ अक्तूबर को क्वांगतुंग प्रान्त के सूबेदार साहब ने अपनी राज-धानी कैरटन में एक जलूस निकाला और बड़े तपाक के साथ नगर से होकर निकले, रास्ते में किसी ने बम फेंक कर उनकी सूबेदारी की समाप्ति कर दी, इसके कुछ ही पीछे कैरटन छोड़ कर सारा प्रान्त प्रजातंत्र के अन्तर्गत हो गया।

इसी के लगभग तैयुआन की सर्कारी सेना जो विद्रोहियों के विरुद्ध भेजी जाने वाली थी उन से जा मिली, यह नगर शांसी प्रान्त में है ।

पेकिंग से कुछ दूर पर लाभ्चउ एक स्थान है । वहाँ एक सर्कारी सेना थी । उसे हूये जानेकी आज्ञा दी गयी । सिपाहियों ने उस समय तक जाना अस्वीकार किया जब तक कि उनकी शर्तें न मान ली जायँ वह शर्तें यह थीं—

(१) जातीय सभा ने नियमित शासन और दायित्व–पूर्ण कैबिनेट (अर्थात् मंत्रिमण्डल) के विषय में जो प्रस्ताव किये हैं वह मान लिये जायँ।

(२) जिन लोगों ने सर्कार के विरुद्ध कोई राजनैतिक अपराध किये हों वह सब क्षमा किये जायँ।

सर्कार ने हार मान कर इन दोनों शर्तों को गोल शब्दों में स्वीकार कर लिया ।

इस प्रकार देखते ही देखते तीन ही महीनों के भीतर यह विद्रोह इतनी दूर फैल गया । इसकी अप्रतीक्षित वृद्धि ने न केवल चीन सर्कार और विदेशियों को दंग कर दिया प्रत्युत स्वयं इस आन्दोलन के नेताओं को भी यह आशा न थी कि उनका प्रभाव इतना शीघ्र इतना विस्तार पकड़ेगा

दशम अध्याय

सरकार की अस्थायी जीत

कोइ आन्दोलन हो, एक दम नहीं सफल होता । चाहे आन्दोलन किसी अन्यायी राजा के विरुद्ध हो, चाहे किसी नौकरशाही के विरुद्ध हो, चाहे किसी भावशून्य विदेशी शासन के विरुद्ध हो, पहिले २ उसके मार्ग में अनेक कण्टक पड़ते हैं राजनैतिक ही नहीं, समाजिक, साम्प्रदायिक, सभी आन्दोलनों की यही गति है । एक ओर बड़ी संख्या, धन, अधिकार और संगठन होता है, दूसरी ओर कोरा उत्साह होता है । अधिकारिवर्ग में नैतिक बल की न्यूनता होती है पर भौतिक बल का आधिक्य होता है, वैप्लविक पक्ष में नैतिक बल का आधिक्य होता है पर भौतिक बल की न्यूनता होती है । ऐसी दशा में आरम्भ में अधिकारिवर्ग की जीत स्वाभाविक है । संसारी काम संसारी ढंग से ही होते हैं । राम कृष्ण आदि अवतारी पुरुषों ने भी पृथ्वी पर प्रायः पार्थिव शस्त्रों से ही काम लिया था। जब तक वैप्लविक दल भौतिक सामग्री उपार्जित करता है तब तक अधिकारी दल अपनी संगृहीत सामग्री का उपयोग करता है, इसी लिये नीतिपरक होते हुए भी वैप्लविक दल की क्षति होती है । अमेरिका, इटली, यूनान, पोलैण्ड आदि के इतिहास यही दिखलाते हैं कि जो न्याय और नीति पथ पर होते हैं उनको भी एक नहीं अनेक वार दबना पड़ता है। पर यह भी निर्विवाद है कि अन्तमें जीत धर्म्म की ही होती है । भौतिक सामग्री क्षीण होती जाती है, नैतिक सम्पत्ति अमर है । इसी से अधिकारिवर्ग का बल घटता जाता है पर वैप्लविक दल, यदि वह सचमुच नीतिपक्ष पर हो, प्रबल होता जाता है ।

देश हितैषियों के मार्ग में जो वाधाएँ पड़ती हैं वह अत्यन्त आवश्यक हैं। जो वस्तु सुगमता से मिलती है वह सुगमता से खो दी जाती है पर जो स्वातंत्र्य बड़े २ कष्टों को सहकर प्राप्त किया जाता है उस की रक्षा भी वैसी ही की जाती है। साथ ही इसके, कष्ट ही सच्चे झूठे की कसौटी है, विपत्ति के समय ही इस बातकी पहिचान होती है कि कौन मनुष्य देश का सच्चा प्रेमी है और कौन झूठा 'देश' २ बकना एक फैशन सा हो गया है। जैसा कि 'अकबर' (उर्दू के प्रसिद्ध वर्तमान कवि) ने कहा है:—

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ

इस प्रकार के नेता, देश के मौखिक सेवक, सर्वत्र होते हैं, पर विपत्ति ही इनकी सच्ची परीक्षा है। तीसरा लाभ यह है कि लोग धैर्य्य सीखते हैं। संसार में कहीं सदा सुख ही सुख नहीं मिलता। कार्य्यक्षेत्र में नये पाँव रखने वालों को इस बात की शिक्षा भी मिलनी चाहिये।

आपत्ति से एक और लाभ होता है। सिद्धान्तों की परीक्षा हो जाती है। वृक्ष फल से जाना जाता है। धर्म्म की परीक्षा उसके अनुयाइयों को देख कर होती है जिस सिद्धान्त के उपासक कष्टों में पड़कर भी अपने धैर्य्य को नहीं छोड़ते उसकी उत्तमता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। जो लोग स्वतंत्र विचार नहीं कर सकते, जिनमें इतनी योग्यता नहीं है कि सिद्धान्तों की तुलना कर सकें, वह भी उनके अनुयाइयों की दृढ़ता आदि को देख कर उनका आपेक्षिक श्रेष्ठता का निर्णय कर सकते हैं। योरप में जो लोग ल्यूथर के सिद्धान्तों को समझने की क्षमता नहीं रखते थे वह भी प्राटेस्टेण्टोंकी असामान्य दृढ़ता पर मुग्ध हो गये, भारत में सिक्खों के असाधारण धैर्य्य और सहिष्णुता ने न जाने कितने लोगों को गुरु नान्हक का भक्त बना दिया।

अतः राजनैतिक विपत्तियों से घबराना अच्छा नहीं है। विपत्तियों से उत्तेजित होना ही वीर पुरुषों और सत्यसन्ध मनुष्यों का लक्षण है।

कदर्थितस्यापि ही धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधो शिखा यान्ति कदाचिदेव ॥
अर्थः सुखं कीर्तिरपीह मास्तूदनर्थ एवास्तु तथापि धीराः ।
निजप्रतिज्ञामनुरूध्यमाना महोद्यमाः कर्म समारभन्ते ॥

अभी तक सैनिक सर्कार को कोई भारी क्षति नहीं सहनी पड़ी थी। जो लड़ाइयाँ हुई उनमें उसकी जीत हुई; जिन जिन नगरों को उसने लेना चाहा सहज में ही उसके हाथ लग गये। पर अभी मञ्चू शासन मरा नहीं था। बात यह थी कि कई कारणों से वह अपना पूरा बल लगा नहीं सका था पर बुझने के पहिले दीपक एक बार बड़े ज़ोर से चमक उठता है। मञ्चू शासन ने भी इसी प्रकार एक बार अच्छा ज़ोर दिखलाया।

२८ अक्तूबर को दोनों सेनाओं की मुठभेर हुई और परिणाम विद्रोहियों के लिये बुरा ही रहा। उनको कुछ पीछे हटना पड़ा। २० अक्तूबर को फिर लड़ाई हुई। विद्रोही दल में ८००० सैनिक थे। सर्कारी सिपाहियों की संख्या १०,००० थी। इन की कुमक पर जहाज़ भी थे। यह पहिली ही खुली लड़ाई थी। एक बड़े मैदान में युद्ध हुआ। विद्रोही सेना बड़ी वीरता से लड़ी पर हार गयी। ५०० मनुष्य मारे गये और १५०० घायल हुए। बहुत सी तोपें और सैकड़ों क़ैदी सर्कारी सेना के हाथ लगे। घायलों के लिये और तो कोई प्रबन्ध था नहीं, पास के यूरोपियन अस्पतालों ने उनकी मरहम पट्टी का प्रबन्ध किया।

इस के पीछे एक भीषण घटना हुइ। सरकारी सेना हैंकाउ लेने के लिये उस पर गोले बरसा रही थी। उस के पास जर्मनी के प्रसिद्ध क्रप कारखाने की बनी तोपें थीं। उधर विद्रोही सिपाही वूचांग और हनियांग से इन तोपों का उतर दे रहे थे। पहिले तो सरकारी तोपों ने शत्रु की तोपों को चुप कर देना चाहा पर जब ऐसा न हो सका तो सरकारी जनरल यिनचांग ने हैंकाउ को आग लगा देने का निश्चय किया। यह काम सैनिक नियमों के विरुद्ध था। कम से कम ऐसे अवसर पर नगरवासियों को पहिले

से सूचना दे दी जाती है कि वह एक नियत समय के भीतर नगर छोड़ कर चले जायं पर जनरल थिन ने यह सब कुछ न करके आग लगा ही दी। तीन दिन तक आग जलती ही रही सहस्रों निर्दोष मनुष्य जल मरे, जो बचे उनको कहीं भागने का ठिकाना नहीं था। दो ओर दो सेनाएं, बीच में भस्मीभूत नगर बिचारे कहां जायं। इसपर भी सरकारी सैनिकों ने मनमानी लूट और हत्या की। जो सिपाही लड़ाई में पकड़े गये थे वह बुरी तरह मारे गये, यद्यपि युद्ध के कैदियों को मारना नियम विरुद्ध है। और तो और सरकारी रेड-क्रास * वालों ने घायल विद्रोहियों को मार डाला।

परन्तु इस से विद्रोही हताश नहीं हुए उलटे उनका उत्साह और बढ़ता गया। उधर जनता की सहानुभूति तो इनके साथ थी ही इस हैंकाउवाली घटना ने इस की मात्रा और बढ़ा दी। जिस शासन के सेनापति एक नगर को बिना किसी प्रकार की सूचना दिये इस निर्दयता से जला सकते हों, जिस के सिपाही इस प्रकार के पक्के लुटेरे और हत्यारे हों, जिसके डाक्टर घायलों को मार डालते हों, जो युद्ध के नियमों का इस प्रकार खुला निरादर देखती हों, उस के प्रति लोगों को घृणा, क्रोध, द्वेष, होना स्वाभाविक ही था। पर सर्कार अपने कृत्य से बहुत प्रसन्न थी। जनरल थिन से भी बड़े एक जनरल फ़ेंग क्युओ-चांग सेनापति बना कर भेजे गये। विजयप्राप्ति और उस से भी बढ़ कर लूट प्राप्ति, से सर्कारी सिपाहियों का उत्साह भी बढ़ गया था। देखते ही देखते लगभग ७०,००० सिपाही एकत्र हो गये।

उधर विद्रोहियों की सेना में भी हुआंग हिसन नामक एक नये जनरल आगये थे। यह बड़े ही योग्य व्यक्ति थे। इनके सुप्रबन्ध से सेना फिर ठीक हो गयी। उसकी संख्या भी लगभग ८०,००० तक पहुँच

---

* युद्धमें जो लोग अस्पतालों में काम करते हैं उनके वस्त्रोंपर लाल रङ्ग का क्रास का चिन्ह होता है। उन पर शत्रु भी गोली नहीं चलाता पर उनका कर्तव्य है कि शत्रु के घायल सिपाहियों के साथ भी अपने सिपाहियों का सा बर्ताव करें।

गयी। सैनिकों की संख्या तो सर्कारी सेना से अधिक थी पर तोप आदि सामग्री उतनी अच्छी न थी। परन्तु इनकी फुर्ती, निर्भयता, दूरदर्शिता आदि सद्गुण इस कमी को पूरी कर देते थे। एक अँग्रेज संवाददाता ने लिखा था "We are getting to regard pluck as part and parcel of the rebel make-up" अर्थात् "हम लोगों को प्रतीत होने लगा है कि फुर्तीलापन विद्रोहियों की बनावट का एक आवश्यक अंग है।"

सर्कारी सेना भी चुपचाप नहीं थी। उसके जनरल का अनुमान था कि यदि लोग एक बार पूरी तरह डरा दिये जायँ तो विद्रोह पक्ष को आप ही छोड़ देंगे। उन्होंने अपनी ओर से इस काम में कोई कसर न रक्खी। सिपाहियों को पूर्ण स्वातंत्र्य दे दिया गया कि वह जो चाहें करें। हाङ्काउ के आस पास के प्रदेश में सैनिक राज था। लोगों का मारा जाना, घरों का जलाया जाना, स्त्रियों के सतीत्व का भ्रष्ट किया जाना, यह सब एक सामान्य बात हो गयी। जिन लोगों पर यह सन्देह हो जाता कि इन्होंने किसी विद्रोही को, चाहे वह विद्रोही मरणासन्न आहत रहा हो, किसी प्रकार की सहायता दी है या कुछ देर के लिये शरण दी है वह घरों में बन्द करके जला दिये जाते। सर्कारी सेना का अभिमान इस बात से और भी बढ़ गया था कि इस बीच में इसने हनियांग ले लिया था और ऐसा प्रतीत होता था कि वूचांग भी शीघ्र ही इसके हाथ में आ जायगा। यदि वूचांग भी सर्कार को मिल जाता तो इसका तात्पर्य्य यह होता कि सारा हूपे प्रान्त जो इस समय प्रजातंत्र का एक प्रधान केन्द्र हो गया था विद्रोहियों के हाथ से निकल गया।

इसी अवसर पर सर्कार के बहुत समझाने बुझाने पर युआन शिहकाइ पेकिंग आये। उन्होंने आते ही झगड़े के शान्त करनेका प्रयत्न किया और अंग्रेज़ी कान्सल के द्वारा विद्रोहियों से बात चीत करनी आरम्भ की। जब तक कुछ निश्चय न हो जाय तब तक दोनों पक्षों ने युद्ध बन्द करना स्वीकार किया।

एकादश अध्याय।

शंघाइ और नैकिङ्ग का पतना।

इधर हूपे में यह घटनाएँ हो रही थीं उधर नवम्बर के आरम्भ में शंघाइ में आग भड़की. नगर सहज में ही विद्रोहियों के हाथ लग गया। सर्कारी जहाज भी इन से मिल गये। प्रधान जहाजी अफसर सरकार के भक्त थे पर सारे नाविक वैप्लविक दल के थे, इसलिये उनकी एक न चली। शंघाई में वूसिंग नामक किला था। उसके अफसर भी राजभक्त थे पर सैनिकों के बिगड़ जाने से उनको भी प्राण बचा कर भागना पड़ा।

अभी तक शंघाई में कोई शिक्षित विद्रोही सेना न थी। केवल सामान्य मनुष्यों ने विद्रोह का झण्डा उठाया था। जो थोड़े बहुत शिक्षित थे उनकी संख्या अत्यल्प थी। शेषों के पास पहिले तो कोई हथियार ही न थे। पीछे से जब उनको हथियार मिले भी तो वह यह ही नहीं जानते थे कि उनको चलाना कैसे होता है। इन में से बहुत से अभी लड़के थे इसी दशा में इन लोगों ने शंघाइ के प्रसिद्ध कियांगन शस्त्रागार पर आक्रमण किया। यह शस्त्रागार जहाजों या वूसिंग किले की भांति पोच न था। उसके अफसर और सिपाही सभी राजभक्त थे, उन्होंने विद्रोही सेना का बड़ी वीरता से सामना किया। उनको सुरक्षित स्थान, और उत्तम शस्त्रों और समुचित शिक्षा का सुभीता भी था पर विद्रोहियों के अदम्य साहस और उत्साह के सामने इन गुणों से कुछ काम न निकला शस्त्रागार भी विद्रोहियों का हो कर ही रहा।

इस घटना का वर्णन करते हुए 'नार्थ चाइना डेली न्यूज़' के एक संवाददाता ने लिखा था—" Truly the burden of Manchu guilt and the responsibility of Manchu tyrranies are great when such sheep will offer themselves joyfully for the slaughter that must ensue on the first real encounter with disciplined troops. It was pathetic at times. The attack on the arsenal was led by a man with and old sword with a handle 3 ft. long and a blade equally long. He was shot down but others equally in-expert and badly-armed followed him."

"सचमुच मन्चुओं के पाप का बोझ और उनके कुराज का दायित्व बहुत ही भारी होगा जबकि ऐसी भेड़ उस हत्याकाण्ड में हर्ष के साथ बलि बनने के लिये आगे आती हैं जो शिक्षित सिपाहियों के साथ इनकी पहिली ही लड़ाई में अवश्य होगा। कभी २ देख कर दया आती थी। शस्त्रागार पर जो आक्रमण हुआ उसका नेता जो मनुष्य था उसके पास केवल एक पुरानी तलवार थी जिसकी मूठ ३ फीट लंबी थी। उसका फल भी उतना ही लम्बा था। उसे गोली लगी पर उसी की भांति अनुभव शिक्षा और शस्त्रहीन दूसरे मनुष्य आगे बढ़ते गये।"

इन लोगों की देशभक्ति की कहां तक प्रशंसा की जाय। कहां शस्त्रागार की महाकाय अग्निवर्षक तोपें, कहां ६ फुट लम्बी पुरानी तलवार! ऐसे शस्त्र तो आज कल खुले मैदान की लड़ाई में भी काम नहीं आते, वहां तो एक सुदृढ़—निर्मित, सुरक्षित, गढ़ प्राय, मकान लेना था पर जैसा कि पहिले कहा जा चुका है 'तेजोयस्य विराजते स बलवान' इन लोगों की तपस्या कब निष्फल जा सकती थी।

पुराणों में यह कथा आती है कि एक रक्तबीज नाम का दुष्ट दैत्य था। उसके रक्त के जितने विन्दु पृथ्वी पर गिरते थे उतने ही उसके तुल्य रक्तबीज उत्पन्न होते थे। पर अन्त में देवी के हाथ से उसकी मृत्यु हुई और युक्ति ऐसी की गयी कि उसका रक्त क्षीण होता गया और नये रक्त-बीज न बने। धर्म्म युद्ध में भी रक्त बीज सी ही कुछ बात होती है। न्याय और धर्म्म के लिये जो लोग मारे जाते हैं उनके पीछे उन्हीं के ऐसे अनेक धर्म्म वीर उत्पन्न होते हैं, शहीदों का रक्त शहीद उत्पन्न करता है, पर रक्त बीज और धर्म्म वीर में एक अन्तर है। रक्तबीज के साथ ऐसी युक्ति की जा सकती थी कि उससे दूसरे रक्त बीज न बने, धर्म्म वीर के साथ ऐसा युक्ति नहीं की जा सकती। जहां धर्म्म वलि का रक्त गिरेगा वहां दूसरा धर्म्म बलि अवश्य उत्पन्न होगा और अन्त में धर्म्म पक्ष तो अजेय है ही, सर्कारी सिपाही भी वीर थे पर वह अन्याय पक्ष पर लड़ रहे थे, उन विचारों की केवल वीरता से क्या होता?

शंघाई में शीघ्र ही प्रजातंत्र का शासन बैठ गया। इस नगर में भी बहुत से यूरोपियन थे पर उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया गया। सर्कारी सेनाएँ थीं ही नहीं इस लिये हांकाउ आदिकी भाँति साधारण प्रजा को भी किसी प्रकार की क्षति या अत्याचार नहीं सहना पड़ा।

इसी के लगभग नैकिंग में भी लड़ाई हो रही थी। यह नगर एक शहर पनाह अर्थात् दृढ़ दीवार से घिरा हुआ है, दीवार की लंबाई (या घेरा) ११½ कोस है, नगर में उस समय ११,५०० सिपाही थे। यह तीन विभागों में विभक्त थे:—

(क) तातारी जनरल तिएह लिआंग के नीचे २,००० मञ्चू।

(ख) जनरल चांग हसुन के नीचे ४००० पुराने ढंग के सिपाही।

(ग) नये ढंग के ५,५०० सिपाही।

मञ्चुओं पर तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता था, पुराने ढंग के ४,००० सिपाही भी विश्वस्त थे परन्तु नये सिपाहियोंकी राजभक्ति पर

सन्देह था। पहिले तो इनसे गोली बारूद आदि सामग्री छीन ली गयी पर इससे असन्तोष घटनेके स्थान में बढ़ने लगा इस लिये इस शर्त प इनकी सब सामग्री लौटा दी गयी कि यह नगर के बाहर चले जाय।

चारों ओर से विद्रोह के समाचार उड़ने लगे, तातारी जनरल तिए ने नगर की ओर तोपों का मुँह कर दिया और यह घोषणा कर दी ि यदि किसी प्रकार का उपद्रव हुआ तो नगर उड़ा दिया जायगा। इस बीच में पेकिंग से यह आज्ञा आयी कि विद्रोहियों से छेड़छाड़ न की जा पर जनरल तिएह ने उसको अविश्वस्त समझ कर कुछ ध्यान न दिया।

बूढ़े जनरल चांग हसुन ने इनके भी कान काटे। यह विचित्र मनुष् था। इसकी स्त्री स्वर्गीया राजमाता की मुँह लगीं सहेली थी, इसी से इसकी इतनी पदवृद्धि हुई थी पर साथ ही इस में कई गुण भी थी। निरक्ष होते हुए भी, सैनिक विषयों में इसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और अत्यन् क्रूर होते हुए भी इसके सिपाही इससे प्यार करते थे। कम से कम इ में यह गुण अवश्य था कि बिगड़ती हुई सैनिक दशा को भी एक बा सँभाल लेता था। इसके वीर होने में भी कोई सन्देह नहीं था प इसकी वीरता पाशव प्रकार की थी। जैसे बुल बुल चारो के लिये लड़ है वैसे ही यह धन के लिये लड़ता था पर जब एक बार लड़ने लग गय तब हटना भी नहीं जानता था।

आपने पहिले तो यह घोषित किया कि मेरे पास २०,००० राजभ सिपाही हैं और फिर विद्रोहियों से कहला भेजा कि यदि मुझे ८००,०० (आठ लाख) तेल दो तो तुम से मिल जाऊँ आरम्भ में विद्रोहिय का बल कम था। इस लिये आप का भाव बढ़ते बढ़ते १,४००,०० (चौदह लाख) तेल तक पहुँच गया। पर जब विद्रोहियों का पक्ष प्रब हो चला और उनकी जीत के लक्षण प्रतीत होने लगे तो आप ७,००,०० (सात लाख) पर उतर आये। अन्त में कुछ निश्चित नहीं हुआ

यह थी कि विद्रोह योंही इतने प्रबल थे कि विना जनरल चांग को मिलाये भी उनका काम चल सकता था।

तब तक इन्होंने नगर में सैनिक विधान (मार्शल लॉ) जारी कर दिया। अभी थोड़े ही दिन हुए जब लाहौर में मार्शल लॉ जारी हुआ तो उसकी संक्षिप्त परन्तु व्यापक परिभाषा इस प्रकार की गयी थी। "It is the will of the Military Commandant to enforce law and order" अर्थात् "शान्ति रखने के लिये सैनिक अफ़सर की जो कुछ इच्छा हो उसका नाम मार्शल लॉ है" ऐसा कानून किसी पुस्तक में तो लिखा जा सकता ही नहीं, क्योंकि यह वस्तुतः कोई क़ानून नहीं एक व्यक्ति की इच्छा मात्र है। वह जो कुछ उचित चाहे कर सकता है। जैसा कि किसी ने कहा है "Martial law is negation of law" "क़ानून के प्रत्याख्यान का नाम सैनिक क़ानून है।"

मार्शल लॉ के नाम से जनरल चांग ने भी अपनी इच्छा से दिल खोल कर काम लिया। आपने एक बड़ी कृपा की कि कई दिनों तक नगर का यि-कैंग फाटक नित्य एक घण्टे के लिये खोल देते थे। इस से लगभग सत्तर या अस्सी सहस्र मनुष्य निकल गये। जो रह गये उनको मार्शल लॉ का मजा मिला। ८ नवम्बर को घर २ तलाशी हुई। जिसके ऊपर रत्ती भर भी सन्देह हुआ वह मार डाला गया और उसका सिर काट कर लटका दिया गया। सन्देह के लिये कुछ विशेष प्रमाण की तो आवश्यकता थी ही नहीं। पास में रुपया होना पर्य्याप्त था। चोटी का न होना (क्योंकि विद्रोहियों ने चोटियाँ कटवा डाली थीं) तो पक्का प्रमाण था। कम से कम ५०० मनुष्य इस प्रकार मारे गये।

जैसे व्याघ्र को जब एक बार मनुष्य के रक्त की चाट लग जाती है तो वह उसी को ढूँढ़ता है उसी प्रकार जनरल चांग की भी प्यास बढ़ती गयी। १५ नवम्बर को यह आज्ञा निकली कि जिस किसी के पास किसी प्रकार का विद्रोही चिन्ह हो वह उसे तीन दिन के भीतर नाश कर दे।

लोगों ने सोचा चलो अब छुट्टी हुई। जिसके पास कोई विद्रोही पुस्तक, समाचार पत्र, विज्ञप्ति, झण्डा, फूल आदि था उस ने, यदि उसका छिपाना असम्भव था, उसे जला कर या अन्य प्रकार से नष्ट कर दिया। पर यह किस में क्षमता थी कि जनरल चांग की बुद्धि की तह तक पहुँच सके। लोग इस बात को भूल गये कि विद्रोही झण्डे का रंग श्वेत था। बस तीन दिन बीतने पर जो कोई श्वेत रंग का वस्त्र पहिन कर निकला वह मारा गया। श्वेत रंग की रुमाल भी विद्रोही चिन्हों में गिनी गयी। जनरल चांग के गण गलियों में इसी उद्देश्य से फिरते थे कि कोई बहाना मिले या यदि न मिले तो ढूँढ़ लिया जाय, और मार पीट हत्या का बाजार गर्म हो।

इन कड़ाइयों का दृश्य फल भी हुआ। फल वही जो ऐसे कामों का होता है। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रजा में से विद्रोह भाव की गन्ध तक निकल गयी। पर यह सच्ची शान्ति न थी। आँधी आने के पहिले हवा में सन्नाटा खिंच जाता है, गहिरा पानी सब से कम चञ्चल होता है। यह शान्ति भी वैसी ही थी। दमन नीति का यह अत्युज्वल उदाहरण था। लोगों के हृदय क्रोध से भर रहे थे पर उनको उस समय अपना क्रोध रोकना पड़ता था। यह दशा दमन करने वाले के लिये बड़ी भयंकर है। वह समझता है कि मैंने आग बुझा दी है पर वस्तुतः वह अपने लिये एक छिपा हुआ ज्वालामुखी बनाता है। पता नहीं यह गुप्त आग कब फूट निकले और अपने प्रज्वलित करने वाले को भस्मसात् कर दे।

विद्रोही जनरल का नाम ह्यु तुंघ-चिह था। उन्होंने शंघाइ आदि से सिपाही एकत्र किये। जहाजों ने भी सहायता की ३० नवम्बर को नगर पर आक्रमण हुआ। जनरल चांग का सब किया कराया मिट्टी हो गया। २० दिसम्बर को नगर विद्रोहियों के हाथ में चला गया।

जनरल चांग बड़ी वीरता से लड़े। जब नगर में से हटना पड़ा तो पास की पर्पल मौण्टेन (बैंगनी पहाड़) नामक पहाड़ी पर जा अड़े

यद्यपि वहाँ ठहरना मृत्यु के मुँह में जाना था पर वह हटते ही न थे। बड़ी कठिनाइयों से उनके साथियों ने उनको वहाँ से हटाया। वहाँ से चल कर वह सूचन नामक स्थान पर फिर रुक गये। वहाँ उन्होंने कुछ सिपाहियों को एकत्र कर के फिर लड़ाई की पर अन्त में निराश होकर जब कोई साथी न रहा तो पेकिंग चले गये। उनको लोग 'The Butcher of Nanking' "नैंकिंग का कसाई" कहा करते थे।

नैंकिंग के पतन में डाक्टर मैक्लिन नामक एक अंग्रेज सज्जन ने भी सहायता दी थी। नगर में जनरल चू नामक एक सर्कारी अफ़सर थे। इनको गोली लगी थी। डाक्टर मैक्लिन इनको औषधि दे रहे थे। चू ने मैक्लिन से कहा कि हम लोग चाहते हैं कि नगर विद्रोहियों को दे दें पर पता नहीं विद्रोही कैसी २ शर्तें करेंगे। इस बात का निश्चय करने का भार मैक्लिन ने अपने ऊपर लिया। अपने को संदिग्धावस्था में डालकर वह विद्रोही सेनापति से मिले और उदार शर्तें ठीक कर लाये। यह शर्तें ऐसी थीं कि इनको स्वीकार कर के नगर दे देने से सर्कारी सैनिकों का अपमान नहीं हो सकता था।

नगर लेकर वैप्लविकों ने बड़ा ही सुदृढ़ और उत्तम प्रवन्ध किया। केवल एक दिन कुछ गड़बड़ हुई। एक जगह कुछ बारूद छिपा कर रक्खी थी। उसमें किसी ने आग लगा दी जिससे लगभग ४० विद्रोही सिपाही मारे गये। इस पर उनके साथी बिगड़ उठे और कुछ देर के लिये क्रोध में कुछ अनाचार भी कर बैठे। परन्तु उनके आफ़िसरों ने उनको शीघ्र ही शान्त कर लिया।

इस जीत ने प्रजातंत्र का पक्ष और भी प्रबल कर दिया। गवर्न्मेंएट को पेकिंग के सुरक्षित रहने के विषय में आशंका उत्पन्न हुई। आशंका भी ठीक ही थी। अब सिवाय होनन और चिहली के सभी प्रान्तों में विद्रोह की आग थोड़ी बहुत लग गयी थी। जो प्रान्त बचे थे वह भी

अशान्ति से भरे थे, केवल समय देख रहे थे। २३ नवम्बर के भीतर २ तेन्ट्सिन और मञ्चूरिया के बन्दरों को छोड़ कर सब बन्दर (जहाजों के ठहरने के स्थान) विद्रोहियों के हाथ में आ गये थे।

इनका सुप्रबन्ध लोगों को और इनकी ओर खींचता था। प्रत्येक प्रान्त में इन्होंने अस्थायी शासन (Provisional Government) स्थापित कर दिया था। जब तक सारे देश के लिये मिलकर कुछ निबटारा न हो तब तक प्रान्तों में पृथक २ शासन का होना उचित ही था। इन शासनों में सभापति और मंत्री, सेनापति आदि कुछ बड़े २ कर्म्मचारी नये होते थे। इनके अतिरिक्त इन्होंने यथासम्भव पुराने कर्म्मचारियों को निकाला नहीं। इससे कर्म्मचारी समुदाय भी प्रसन्न रहा और काम भी पूर्ववत् होता रहा।

इन बातों को देखकर चोर डाकुओं तक में जातीय भाव जाग्रत हो आया। कैण्टन में पुलीस का प्रबन्ध लू लाङ्किंग नामक प्रसिद्ध लुटेरे ने अपने ऊपर ले लिया था।

जनता के उत्साह का ठिकाना न था। ऐसा अनुमान था, और यह अनुमान सम्भवतः ठीक ही रहा होगा, कि रूस और जापान इस ताक में हैं कि कोई बहाना मिले और मञ्चूरिया पर चढ़ दौड़ें। पर लोगों ने ऐसा फूँक २ कर पावँ रक्खा कि दोनों देखते ही रह गये। इस विषय में सभी पक्ष सहमत थे कि चाहे जो कुछ हो विदेशियों को किसी प्रकार का अवकाश न मिले; इस लिये उत्तरी मञ्चूरिया में दोनों पक्षों के लोगों ने मिल कर 'शान्ति संस्थापक समितियाँ' (Peace Preservation Societies) खोलीं और मुकदन आदि नगरों में स्वयं पहरे चौकी का प्रबन्ध किया।

यह सब बातें तो हो रही थीं पर चीन सर्कार की दशा बिगड़ती जाती थी। उसे यह पता नहीं था कि कोई भी ऐसा व्यक्ति है या नहीं

जिस पर विश्वास किया जा सके या जो इस उलझन को सुलझा सकने में समर्थ हो।

द्वादश अध्याय।

दर्बारकी दुर्बलता।

चीन की राजक्रान्ति से सम्बन्ध रखने वाली घटनाएँ इतने थोड़े काल में हुईं कि उनका वर्णन करते समय तिथिक्रम के अनुसार लिखना असम्भव है। इतने बड़े देश में एक ही साथ भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ घटनाएँ घटित हो रही थीं। यदि तिथिक्रम के अनुसार एक ही दिन होने वाली सब घटनाओंका एक साथ वर्णन किया जाय तो स्थान २ के वर्णन अपूर्ण से रह जायँगे और पढ़ने में उनकी रोचकता घट जायगी, इसलिये हमने प्रधान स्थानों के क्रम से ही घटनाओं का उल्लेख किया है; केवल इतना ही ध्यान रक्खा है कि किस स्थान में विप्लवाग्नि पहिले, और किस में पीछे फूटी और फिर एक स्थान की कथा समाप्त कर के दूसरे स्थान की कथा उठायी है। इस से एक ही तिथि का कई बार आगे पीछे उल्लेख हुआ है।

इधर जब कि दूरस्थ प्रान्तों में एक से एक भीषण घटना हो रही थीं पेकिंग शान्त नहीं था। यह सत्य है कि पेकिंग ही क्या, सारे चिहली प्रान्त में कहीं प्रत्यक्ष उपद्रव नहीं था पर इस से यह सिद्ध नहीं होता था कि पेकिंग (या चिहली प्रान्त) वैप्लविक भावों से शून्य था। बात यह थी कि पेकिंग ही मञ्चू शासन का केन्द्र था इसलिये मञ्चू सरकार का जो कुछ बचा खुचा बल वैभव था वह पेकिंग और उस के आस पास ही देख पड़ता था। यह सब जानते थे कि पेकिंग की भी चीनी जनता उन्हीं

उदार भावों की उपासक थी जो अन्यत्र चीनी हृदयों को दोलित कर रहे थे; यह भी असम्भव था कि विद्रोहियों की गुप्त सभाओं की शाखा वहाँ न हो। बस इतनी सी ही बात थी कि गवर्नमेंएट के कुछ और दुर्बल होने की प्रतीक्षा थी।

सर्कार की दुर्बलता दिन दिन बढ़ती ही जाती थी। जिस चीन सर्कार का इतना भय था वह अंग्रेजी शब्दोंमें (a colossus stuffed with clouts) 'चीथड़ों से भरा हुआ देव' निकली। बात यह है कि एक तो प्रजा के ऐक्य के सामने किसी शासन की चल नहीं सकती।

अल्पानामपि वस्तूनां, संहतिः कार्य्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नै, र्बध्यन्ते मत्त दन्तिनः॥

जब तक प्रजा में एका नहीं है तभी तक वह डरायी जा सकती है। दूसरी बात यह है कि प्रजा ने निर्भयता सीख लिया था। यह भी महा-मन्त्र है। वस्तुतः तीर, तलवार, बन्दूक, बम, मशीनगन, डरने की वस्तु नहीं हैं। यह नाशमान् है पर सत्य अमर है। पर हृदय में जो भय रूपी चोर बैठा हुआ है वह इन खिलौनों को भयंकर बना देता है। जैसा कि एक अवसर पर महात्मा गान्धी ने कहा था 'भय करना ईश्वर में अविश्वास करना है' और फिर एशिया वासियों को तो यह देववाक्य सदैव स्मरण रखने चाहिये—

य एनं वेत्ति हन्तारं, यश्चैनं मन्येत हतम्।
उभौ तौ न विजानीत, नायं हन्ति न हन्यते॥

इस अजर अमर सनातन आत्मा को कौन मार सकता है? फिर भय किसका? शरीर तो एक दिन यों भी जायगा फिर धर्म्म या देश की सेवा में इसको होम देने से बढ़ कर और कौन सी मृत्यु हो सकती है? जब किसी जाति में यह भाव आ जाता है तो उसकी इच्छाओं के साथ बलात्कार करना शासकों के लिये घातक होता है। चीन के इतिहास में

जिस समय यह अवस्था पहुंच गयी उसका कथन करते हुए मि: लॉटन कहते हैं "The sequel proved in striking fashion that no monarchy, no matter how sacred or ancient its traditions may be, no matter how autocratic its power, can survive save with the authority of willing subjects" "परिणाम ने यह सिद्ध कर दिया कि कोई राजसत्ता, चाहे वह कितनी ही पवित्र या प्राचीन मानी जाती हो, चाहे उसका बल कितना ही निरंकुश हो, बिना प्रजा की इच्छा से अधिकार प्राप्त किये बच नहीं सकती"

मञ्चू दर्बार की समझ में भी बात धीरे २ आने लगी थी पर यह समय चूक कर पछताने वाली बात थी। पहिले तो दर्बार ने रोब और डाँट से काम लेना चाहा पर जब धमकियों और बन्दर घुड़कियोंसे काम न चला तो वह सँभल गया। धीरे २ प्रजा से प्रार्थना करने की नौबत आ गयी। समय २ पर जो घोषणाएं और राजाज्ञाएं निकलती थीं उनसे यह बात प्रकट हो जाती है। २१ अक्तूबर की निम्न लिखित घोषणा इस परिवर्तित अवस्था का प्रमाण है। वह स्पष्ट बतलाती है कि सर्कार का हाथ काँपने लगा था:-

"The Throne is ever imbued with broad-minded principles in its policy, and all the subjects of the Empire are viewed with equal benevolence, and without Our having once indulged in persecuting them to an extraordinary extent. The ringleaders of the rebellion are really the greatest sinners of the most cruel type and are, of course, unpardonable in law... ....All presons who have been pressed bodily

into service by the rebels but who will save themselves by returning at once shall be permitted to turn a new leaf without being questioned as to their past behaviour, be they soldiers or people.

...........Should any roll-call book of the rebels be discovered, let it be instantly burnt and not the least enquiry be made that may cause distress."

"सम्राट् * की नीति सदैव उदार सिद्धान्तों से परिचालित होती है और साम्राज्य के सभी प्रजावर्ग समान दयादृष्टि से देखे जाते हैं। कभी उनको अत्यधिक कष्ट नहीं दिया गया।

........विद्रोह के नेता सचमुच बड़े निर्दय प्रकार के महान् पापी हैं और नियमतः अक्षम्य हैं......जो लोग दबाव डाल कर विद्रोहियों में मिला लिये गये हैं, पर तुरन्त लौटकर अपने को बचाना चाहते हैं उनको ऐसा करने की आज्ञा दी जायेगी और चाहे वह सिपाही या सामान्य मनुष्य हो उनसे उनके पिछले चालचलन के विषय में कुछ पूछताछ न की जायगी।

...यदि विद्रोहियों की कोई नामावली मिल जाय, तो वह तत्काल जला दी जाय और कोई ऐसी जाँच न की जाय जिससे किसी को कष्ट हो।"

यह आशा की गयी थी कि इस घोषणा को देख कर बहुत से लोग विद्रोही दल को छोड़ देंगे पर आशा निराशा में परिणत हुई। अब लोग सर्कार को डरते ही नहीं थे। उससे क्षमा प्राप्त करने की परवाह किसको थी।

---

* चीनी घोषणाओं में सम्राट् के लिये "The Throne" 'सिंहासन' शब्द आता है पर मैंने सर्वत्र 'सम्राट्' से ही अनुवाद किया है। "सिंहासन की सम्मति है" इत्यादि बुरा प्रतीत होता है।

इधर युआन शिहकाइ को बुलाने का बड़ा प्रबल प्रयत्न हो रहा था। १४ अक्तूबर को वह हूकुआन के गवर्नर नियत किये गये पर वह इतने से सन्तुष्ट नहीं थे। बिना पूर्ण अधिकार के वह इस झगड़े में पड़ना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने सम्राट् को धन्यवाद देते हुए लिखा कि मेरा पाँव अभी अच्छा नहीं हुआ। वस्तुतः पाँव में तो कुछ हुआ नहीं था पर जब उनको निकालते समय सर्कार ने झूठमूठ उनके पाँव के रोगी होने का बहाना निकाला था तो उन्होंने भी उसी बहाने से काम लिया। उनको लिखा गया कि तत्काल अच्छे हो जाव। पर सचमुच का रोग हो तो स्यात् अच्छा भी हो जाय। बहाने के रोग का क्या ठिकाना; वह तो रोगी की इच्छा से ही अच्छा हो सकता है। २७ अक्तूबर को वह हाइ इम्पीरियल कमिश्नर (High Imperial Commissioner) नियत हुए और उनको सैनिक और नाविक विभाग पर पूर्ण अधिकार दिया गया। तब कहीं जाकर पाँव अच्छा हुआ और वह घर से चले।

२२ अक्तूबर को जातीय सभा ने सम्राट् की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा उसमें मुख्यतः तीन बातों की प्रार्थना थी :—

(१) सभा से परामर्श लेकर नियमित शासन के नियम बनाए जायँ।

(२) तुरन्त दायित्व-पूर्ण कैबिनेट (मंत्रिमण्डल) स्थापित किया जाय और राजवंश का कोई व्यक्ति इसका सदस्य न हो सके।

(३) जिन लोगों ने कभी सर्कार के विरुद्ध कोई काम किया हो वह सब क्षमा कर दिये जायँ।

इस पर विचार होने भी न पाया था कि उत्तर से सेना के असन्तुष्ट होने का समाचार आया। उधर पेकिंग की अवस्था भी 'वैद्युत्' हो रही थी। अतः घबराकर राजाभिभावक, राजकुमार चुन ने ३० अक्तूबर को सम्राट् के नाम से एक घोषणा निकाली, यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध घोषणा है। इसे 'Penitential Edict' 'पाश्चात्तापात्मक घोषणा' कहते हैं :—

Penitential Edict

It is now three years since with much trepidation and misgiving we took up the arduous task of government and it has ever been our object to promote the best interests of all classes of our subjects- But we have employed incompetent ministers and have. in our conduct of affairs of state, displayed all too little statesmanship.

........Much of the people's wealth has abready been taken and not a single measure beneficial to the people given in return.

..........By degrees it has come to this that when the people were seething with discontent we knew it not; when danger was imminent we were kept in ignorance..........In short, the whole Empire is in a ferment and men's minds on fire, the spirits of past Emperors are disturbed and the people all reduced to utter misery. The fault lies solely with us, and we hereby declare to all the world that we swear an oath with our subjects te bring about a general reform for the establishment of a full constitution.

.... As regards putting an end to the distinction between Manchus and Chinese, the general edicts issued by the late Emperor must be put into immediate execution.

......We are but a weak body to be set above all your Ministers and people and the result is the outbreak of such a revolt as will destroy all the good performed by our ancestors.

We are grieved at our failure and filled with remorse, and we rely entirely on the support of our people and troops to restore prosperity to the millions of our subjects and to strengthen the foundations of our throne. That peace may succeed disorder and peril yield to safety depends entirely on the loyalty of our people, on whom we rely implicitly. At the present time the financial and foreign situations are both desperate and, even if prince and people work in harmony the condition of the country may still be critical. But if the people disregard the national safety and allow themselves to be led away by counsels of revolt, some overwhelming calamity will befall them and then will China's future be dark indeed. Therefore is Our mind filled with anxiety and apprehension day and night. We earnestly hope that all Our peeople will understand Our meaning

Let this be known to all

पश्चात्तापात्मक घोषणा

तीन वर्ष हुए जब हमने अत्यन्त शंका और आशंका के साथ शासन

का गुरु कार्य्य अपने हाथ में लिया। हमारी सदैव यही आकांक्षा रही है कि प्रजा मात्र का हितसाधन करें परन्तु हमने अयोग्य मंत्री नियत किये और राजकार्य्य में बहुत कम राजनीति का परिचय दिया.........

जनताका बहुत सा धन ले लिया गया है। पर प्रजाके कल्याणके लिये कोई काम नहीं किया गया है...क्रमशः दशा यहां तक पहुंची कि प्रजा अशान्तिसे भरी हुई थी पर हमको इसका पता न था; आपात्ति सिर पर थी हमको इसका सूचना न दी गयी...सारांश यह कि, सारा साम्राज्य उबल रहा है, लोगोंके हृदय क्रोधसे जल रहे हैं, गत सम्राटोंकी आत्माओंको क्षोभ हो रहा है और प्रजा अत्यन्त कष्ट में है। इसमें केवल दोष हमारा है और हम सारे संसारके सामने प्रजासे यह शपथ खाते हैं कि पूर्ण नियमित शासनको संस्थापित करनेके लिये जिन सुधारोंकी आवश्यकता है उनके लिये प्रयत्न करेंगे।

मञ्चू और चीनी के बीच में जो भेद है उन को दूर करने के लिये गत सम्राट् के समय में जो आज्ञाएँ निकली थीं उनके अनुसार तत्काल काम करना चाहिये।

तुम सब मंत्रियों और प्रजावर्ग के ऊपर शासन करने के लिये हमारा शरीर अत्यन्त दुर्बल है। इसी का यह परिणाम है कि ऐसा विद्रोह उठा है जो हमारे पूर्वजों के सब सुकृतों को नष्ट कर दगा। हम को अपनी असफलता पर शोक और पछतावा है और हम को केवल अपनी प्रजा और सेना पर भरोसा है कि उन की सहायता से हमारी करोड़ों प्रजा में शांति पुनः स्थापित होगी और हमारे सिंहासन की जड़ और प्रबल होगी। उपद्रव के स्थान में शान्ति और भय के स्थान में सुरक्षितता का स्थापित होना केवल प्रजा की, जिस पर हम को पूरा भरोसा है, राजभक्ति पर निर्भर है। इस समय देश की आर्थिक और राजनैतिक दोनों अवस्थाएँ बिगड़ी हुई हैं और यदि राजा प्रजा मिलकर काम करें तब भी दशा शंकास्पद होगी। पर यदि जनता जातीय रक्षा की ओर ध्यान न देकर

विद्रोहवादियों के बहकाने में आ जायगी तो उस पर कोई भारी आपत्ति आवेगी और तब चीन का भविष्य सचमुच अन्धकारमय हो जायगा। इसी लिये हमारा चित्त दिन रात चिन्ता और आशंका से भरा रहता है। हम को पूर्ण आशा है कि हमारा सम्पूर्ण प्रजावर्ग हमारे अर्थ को समझ जायगा।

यह सब में घोषित कर दो।

ऐसी घोषणा भी कदाचित् ही कभी किसी नरेश ने निकाली होगी। यथा नाम तथा गुण, यह पूर्णतया पश्चात्तापात्मक है। इसकी पंक्ति २ से यही ध्वनि निकलती है कि दर्बार ने अपने को हारा हुआ मान कर प्रजा की शरण में डाल दिया है पर इससे क्या होता है;

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने॥

यदि यही बातें पहिले की और कही गयी होती तो लोग इनको धन्यवादपूर्वक ग्रहण करते; अब इनकी हँसी होती थी क्योंकि सबको विश्वास हो गया था कि अशक्तः परमः साधुः' सर्कार सामर्थ्य हीन है और अपनी सत्ता बचाने के लिये भाँति २ की घोषणा निकाल रही है।

बात थी भी यही। जो स्वत्व प्रजा ने अब बलात् छीन लिये थे उन को अपनी ओर से प्रदान करने का ढोंग रचना व्यर्थ था। जो वस्तु जनता अपने बाहुबल से अर्जित कर सकती थी उसके लिये वह सर्कार से भीख क्यों माँगे और ऋणी क्यों बने। दान देने लेने का समय तो कब का बीत चुका था। अब तो वह समय आ रहा, या यों कहिये कि आ गया, था कि सर्कार को जो कुछ प्रजा से मिल जाय वही बहुत होता।

अस्तु, उपर्युक्त घोषणा के पीछे एक दूसरी घोषणा द्वारा यह नियम कर दिया गया कि राजवंश के कुमार मंत्रिपद पर न हो सकें और कैबिनट के सदस्य भी न हों।

तृतीय घोषणा ने जातीय सभा को नियमित शासन के नियमों की पाण्डु लिपि शीघ्र प्रस्तुत करने की आज्ञा दी।

चौथी घोषणा द्वारा सब राजद्रोही पूर्णतया क्षमा कर दिये गये । यह आज्ञाएँ दो ही तीन दिनों के भीतर २ निकालीं । इनका तात्पर्य्य यह निकला कि जातीय सभा की २२ अक्तूबर की प्रार्थना स्वीकार हो गयी। इन घोषणाओं की सूचना इंग्लैण्ड भेजते हुए, अंग्रेज़ राजदूत ने लिखा था ।

"The Imperial utterances have graduallhy degenerated with the increasing weakness of the Government until they have ceased to carry much weight with the people" अर्थात् "........ज्यों २ गवर्न्मेण्ट दुर्बल होती गयी सम्राट् की घोषणाएँ भी गिरती गयीं । (अर्थात् उनका स्वर धीमा होता गया) यहाँ तक कि अब जनता पर उनका बहुत कम प्रभाव पड़ता है ।"

लाञ्चाउ के सिपाहियों का पहिले भी कथन आ चुका है । इन सिपाहियों का दिमाग बढ़ता ही जाता था । पेकिंग के उस भाग में जिसमें विदेशी लिगेशन थे एक गुप्त सभा हुई । इसमें जातीय सभा, युआन और इन सिपाहियों के प्रतिनिधि उपस्थित थे । उसमें यह सिपाही इस बात पर अड़े रहे थे कि सम्राट् को चाहिये कि अपने को पूर्णतया जनता की शरण में डाल दें । प्रसंगोन, इस सभा से यह भी सिद्ध होता है कि उस समय युआन चुपके २ नवीन दल से मिल रहे थे ।

२री नवम्बर को शासन सम्बन्धी नियमों के तत्काल उपस्थित किये जाने की आज्ञा हुई । इधर १ली नवम्बर को कैबिनेट ने पदत्याग कर दिया । युआन प्रधान मंत्री चुने जाकर पेकिंग बुलाये गये । ३री नवम्बर की जातीय सभा ने शासन नियमों की पाण्डुलिपि उपस्थित की । उसकी भूमिका में लिखा थाः—

उन सब देशों में जिन में कि नियमित राजसत्ता है अंग्रेज़ी कांस्टिट्यूशन (अर्थात् नियमित शासन का विधान) ही आदर्श माना गया है।

अतः अपने शासन के लिये नियम बनाते समय हमने भी उसके ही सिद्धान्तों का अनुकरण किया है !

धाराएँ

१—राजवंश अच्छिन्न रहेगा ।

२—सम्राट् का शरीर पवित्र और

३—उनके अधिकार शासन के नियमों द्वारा नियमित रहेंगे ।

४—राज के उत्तराधिकार का प्रश्न शासन के नियमों द्वारा निर्णीत होगा ।

५—जातीय सभा शासन के नियमों को बना कर स्वीकृत करेगी और सम्राट् उनकी घोषणा करेंगे ।

६—इनमें यदि कभी सुधार होंगे तो जातीय पार्लिमेण्ट उनका प्रश्न उठावेगी ।

७—पार्लिमेण्ट के उच्च विभाग के सदस्य जनता द्वारा चुने जायँगे । यह चुनाव उन लोगों द्वारा होगी जिनमें क़ानून के द्वारा निर्दिष्ट कुछ विशेष गुण होंगे ।

८—प्रधान मंत्री का चुनाव पार्लिमेण्ट करेगी और सम्राट् अपनी स्वीकृति द्वारा इस चुनाव को पक्का करेंगे । और मंत्रियों का चुनाव प्रधान मंत्री और नियुक्ति सम्राट् करेंगे । राजवंश का कोई व्यक्ति प्रधानमंत्री, अन्य मंत्री तथा उच्च कर्म्मचारी नहीं हो सकता ।

९—यदि पार्लिमेण्ट प्रधान मंत्री से अप्रसन्नता प्रकट करे तो या तो मंत्री पदत्याग कर देगा या पार्लिमेण्ट विसर्जित हो जायगी (अर्थात् टूट जायगी और उसके सदस्यों का फिर से चुनाव होगा) परन्तु किसी मंत्रि-मण्डल विशेष के मंत्रित्वकाल में दो से अधिक पार्लिमेण्ट विसर्जित न होंगी ।

१०—सम्राट् जल और स्थल सेना के प्रधान अध्यक्ष हैं परन्तु साम्राज्य के भीतर पार्लिमेण्ट की इच्छा के अनुकूल ही सैनिक बल से काम लि या जायगा ।

११—सिवाय उन विशेष अवस्थाओं के, जिनका कि स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा, नियमों का पालन अनिवार्य्य है।

१२—विना पार्लिमेण्ट की स्वीकृति के कोई सन्धि नहीं हो सकती पर जिन दिनों पार्लिमेण्ट की बैठक न होती हो उन दिनों युद्ध छिड़ सकता है और संधि भी की जा सकती है। ऐसी दशा में पार्लिमेण्ट की स्वीकृति पीछे लेनी होगी।

१३—हर साल का बजट (आय व्यय लेखा) पार्लिमेण्ट द्वारा स्वीकृत होना चाहिये और यथासम्भव बजट से अधिक व्यय न होना चाहिये।

१४—राजवंश के व्यय के लिये द्रव्य पार्लिमेण्ट स्वीकार किया करेगी।

१५—पार्लिमेण्ट द्वारा स्वीकृत हुए नियम सम्राट् द्वारा घोषित होंगे।

१६—प्रारम्भ में जातीय सभा ही पार्लिमेण्ट मान ली जायगी।

(ऊपर कई साधारण धाराएँ छोड़ दी गयी हैं)।

सम्राट ने इन सब नियमों को स्वीकार कर लिया और ३ सप्ताह पीछे जब इनके अनुसार आवश्यक चुनाव हो चुके, उन्होंने निम्नलिखित शपथ खायीः—

The Dynasty has been carried on for nearly 300 years. I, your descendent, Pueyi, since my enthronement have endeauowed to consummate the constitutional programme, but my policy and my choice of officials has not been wise. Hence the recent troubles. Fearing the fall of the Sacred Dynasty, I accept the adviee of tho National Assembly and swear to uphold the nineteen constitutional articles and to organise a Parliament, excluding nobles from administrative

posts. I and my descetndants will adhere to it for ever. Your Heavenly Spirits will see and understand.

"३०० वर्षों तक राजवंश चला है। मैं आपका वंशज पूयि, (बालक सम्राट् हुइआन तुंग का जन्म नाम पूयि था), अपने अभिषेक के समय से नियमित शासन के प्रवन्ध का प्रयत्न करता रहा हूं, परन्तु मेरी नीति ठीक नहीं थी और मैंने योग्य कर्म्मचारियों की नियुक्ति नहीं की; इसी लिये यह उपद्रव हुए। पवित्र राजवंश के पतन की आशंका से मैंने जातीय सभा का परामर्श मान लिया है और उन्नीसों धाराओं को पालन करने और पार्लिमेण्ट को संगठन करने की इस शर्त को मानते हुए शपथ खाता हूँ कि राजकुमारादि सर्दार उच्च पदों को न पावेंगे मैं और मेरे वंशज इसको सदैव मानेंगे। आपकी स्वर्गीय आत्माएँ साक्षी हैं और समझती हैं।"

प्रायः ईश्वर या किसी देव देवी को साक्षी मान कर शपथ खाते हैं चीन में पितरों को ही देव तुल्य मानकर साक्षी मानते हैं।

इतना ही नहीं, हो लिंग तांग नामक गुप्त सभी के कर्मचारी उच्च सर्कारी पदों के अधिकारी मान लिये गये। सर्कारी कोष में सम्राट् के निजीकोष से चार लाख पौण्ड (साठ लाख रुपया) दिया गया। परन्तु परिणाम कुछ न निकला।

काले दत्तं वरं ह्यल्पं, मकाले बहुनाऽपि किं।

बात यह थी कि जातीय सभा तो इतने पर मान जाती पर अब सभा के अधिकार में भी बात न थी। पहिले २ सभा ही चीन के राजनीतिज्ञों की केन्द्र थी पर अब यह अवस्था नहीं थी। सभा के उपचारमय वातावरण ने उत्साहियों को दूर हटा दिया था। इन लोगों को विद्रोही दल में स्थान मिला था। सभा के विचार उदार थे, इसमें सन्देह नहीं पर उसमें नरम दल वालों का आधिक्य था। यह लोग किसी न किसी युक्ति से

साम्राज सिंहासन को बचा रखना चाहते थे। दूसरे दल वाले इससे असहमत थे। उनको १८ या १९ धाराओं की परवाह न थी। वह चीन से राजसत्ता को ही उठा देना चाहते थे। अब इसी दल के हाथ में पासा था। इसी लिये बिचारे दुर्बल दर्बार की दयाजनक घोषणाओं पर कोई ध्यान नहीं देता था।

त्रयोदश अध्याय ।

युआन के शान्ति विषयक प्रयत्न ।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं युआन इम्पीरियल हाइ कमिश्नर नियत किये गये और उन को सैनिक और नाविक विभागों पर पूर्ण अधिकार दिया गया। १ ली नवम्बर को कैबिनेट के पद त्याग करने पर जातीय सभा ने इन को प्रधान मंत्री चुना। ८७ सदस्यों में से ७८ ने इस के लिये सम्मति दी। १३ नवम्बर को यह पेकिंग पहुँचे। सिवाय राजकुमारों और कुछ मञ्चू कर्मचारियों के सब ने ही इन का बड़े आदर से स्वागत किया।

युआन की योग्यता से सभी परिचित थे परन्तु उनका विश्वास पूर्ण रूप से किसी को नहीं था। दोनों पक्ष इन के सिद्धान्तों और विचारों से असन्तुष्ट थे। नरम दल वाले तो इन को अति गरम और गरम दल वाले अति नरम समझते थे। पुराने कर्मचारी जो इनके पाँव को रोगी बनाकर इन को एक बार निकलवा चुके थे इन के उदार और सुधारपरक विचारों को पूरा वैप्लविक समझते थे। नवीन दल वाले इन से इसलिये रुष्ट थे कि यह राजवंश की रक्षा करना चाहते थे। उस पर तमाशा यह था कि यह सब जानते थे कि युआन स्वयं महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। इस से दोनों दल घबराते थे। पर इन सब बातों के होते हुए दोनों को यह विश्वास था कि बिना युआन के काम नहीं चल सकता, इसलिये दोनों ही उन्हें मिलाया चाहते थे।

इस में युआन का विशेष दोष नहीं था। महत्वाकांक्षी वह निःसंदेह थे पर यह उनका स्वभाव था। इस को पलटना उन के वश के बाहर था और यदि महत्वाकांक्षा मर्य्यादा के भीतर रहे तो वह कोई निंद्य वस्तु नहीं है! महत्वाकांक्षी होते हुए भी युआन सच्चे देश भक्त थे। देशी विदेशी सभी इस बात को मानते थे। वह चीन के शासन में आवश्यक सुधार करने के प्रबल पक्षपाती थी। जिस समय यह तेंज्जिन में वाइसराय थे उसी समय इसका परिचय मिल चुका था। परन्तु यह राजसत्ता को हटाने के विरोधी थे। सम्राट् के अधिकार चाहे कितने ही कम हो जाय पर एक सम्राट् का होना आवश्यक है। बिना एक राजा के समाज की स्थिति ठीक नहीं रह सकती। युआन के इस बिचार का कारण न केवल राजनैतिक वरन् धार्मिक और नैतिक था। वह चीनी थे और कांग-फू-त्सी की नैतिक शिक्षा के अनुयायी थे। इस शिक्षाका मूल मंत्र था 'गुरोराज्ञा गरीयसी'। लड़कों को कर्त्तव्य है कि बड़ों की आज्ञा का पालन करें। बड़ों की आज्ञा के उल्लंघन करने या बड़ों को किसी प्रकार का कष्ट देने से बढ़ कर कोई अपराध नहीं हो सकता।

एक बार एक मनुष्य ने अपने पिता को मार डाला। परिणाम में उस को फाँसी हुई। उस के चचा को फाँसी हुई, उस के घर के दोनों ओर के तीन २ पड़ोसी ५००० कोस दूर निकाले गये और उसके आचार्य महाशय १००० कोस फेंके गये। इन लोगों का अपराध यह था कि इन्होंने उसे उचित शिक्षा नहीं दी।

अस्तु, 'पितृदेवो भव, मातृदेवो भव' ही चीन का प्रधान मत है। बौद्ध भी इसी रंग में रंगे हुए हैं। पितर ही चीन के देवता हैं! यह आज्ञा पालन का सिद्धान्त बहुत दूर तक जाता है। माता पिता की आज्ञा मानने से सूबेदार, जिस की आज्ञा माता पिता भी मानते हैं, भी मान्य हुआ। सूबेदार के आगे वाइसराय और वाइसराय के आगे

सम्राट् तक क्रम चला गया था। इस शिक्षा का ही यह फल था कि चीनी प्रजा इतना कष्ट पाकर भी सब कुछ सह लेती थी। उस के लिये सम्राट् केवल एक पार्थिव नरेश नहीं, प्रत्युत धर्म्मावतार, माँ बाप, थे। युआन का यह अनुमान था कि इस आज्ञावर्तित्व की भीत की यदि एक ईंट भी खिसकी तो सारी भीत धड़ से नीचे गिर जायगी। यदि सम्राट् ही नहीं तो वाइसराय कैसा? फिर सूबेदार को कौन पूछेगा और अन्त में माता पिता की कौन सुनेगा? इस का परिणाम यह होगा कि चीनी समाज की सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, दशाओं में बड़ा भारी परिवर्त्तन हो जायगा। इस बुरे परिवर्त्तन को दूर रखने के लिये ही युआन राज-सत्ता को बचा रखना चाहते थे। परन्तु और लोग उन की नीति का कुछ दूसरा ही अर्थ लगाते थे।

पेकिंग आने के पहिले ही इन्होंने अपने दो दूत वूचांग भेजे थे। इन लोगों ने १० नवम्बर को विद्रोही जनरल लि युआन हुंग से भेंट की और उनको युआन के विचार बतलाये। इस पर जनरल साहब क्रोध से लाल होकर बोले "Yuan is a fool. He tries to terrify us by saying that tha Powers will partition China. They will not, as they are neutral but if they try, the 400 millions of China will drive them out. It is this which has so far kept them off not the inept Manchu Government. We know that he sends you to us to gain time. He seeks to sow dissensions amongst us, then he will quell us, province by province, and himself become Emperor. He is an able man: let him join us, he will be the first man available for the President-ship. He says that the Manchus have been favour-

ing him for three generations and he cannot go againist them. This is absurd. If a robber robs us of wife, child and prperrty and then asks us to guard his booty, shall we call him an enemy or a kind master? If he is of our viswe let him join us; otherwise, let him fix a date for battle' अर्थात् "युआन मूर्ख है वह हमको यह कह कर डराना चाहता है कि परराष्ट्र चीन को आपस में बाँट लेंगे। वह ऐसा नहीं करेंगे क्योंकि वह तटस्थ हैं पर यदि वह ऐसा प्रयत्न करेंगे तो चीन के चालीस करोड़ मनुष्य उनको बाहर निकाल देंगे। उन्होंने इसी डर से आज तक ऐसा प्रयत्न नहीं किया, अयोग्य मञ्चू शासन के डर से नहीं। हम जानते हैं कि उसने तुमको यहां इस लिये भेजा हैं कि उसको समय मिल जाय। वह हम में फूट उत्पन्न करना चाहता है तब वह हमको पृथक् २ प्रान्त २ करके दवा लेगा और स्वयं सम्राट् बन जायगा। वह योग्य मनुष्य है उससे कहो कि हम से मिल जाय फिर वह सभापति के आसन का पहिला अधिकारी होगा। वह कहता है कि मञ्चू उस पर तीन पुश्तों से कृपा करते आये हैं इस लिये वह उनका विरोध नहीं करता। यह पागलपन है। यदि कोई डाकू हमारी स्त्री, धन, सम्पत्ति छीन ले और फिर हम से लूट की रक्षा करने के लिये कहे तो हम उसे शत्रु कहेंगे या दयालु स्वामी? यदि वह हमसे सहमत है तो हमसे मिल जाय नहीं तो युद्ध की तिथि निश्चित करें।

इस उत्तर में युआन की नीति के लिये आशा का लेश भी न था। यह स्पष्ट था कि विद्रोही राजसत्ता को निकालने पर ही तुले थे। देश की दशा बड़ी गम्भीर होती जाती थी। ऐसा सुना जाता था कि रूस और जापान मञ्चूरियां और मंगोलिया पर झपटने के लिये बैठे थे। नाम मात्र का बहाना ढूंढ़ रहे थे। युआन ने नये कैबिनेट के सदस्यों के नाम

प्रकाशित किये। इनमें एक भी अनुदार कर्म्मचारी नहीं था। हैंकाउ और नैंकिंग में युद्ध रोकने की आज्ञाएं भेजी गयीं नैंकिंग के सर्कारी जनरल महोदय ने इस आज्ञा का जो सत्कार किया और उसका जो परिणाम हुआ उसका कथन पहिले आ चुका है। इन छोटे स्वेच्छागामी कर्म्मचारियों की भूलें तो और भी सितम ढाती थीं होता २ मेल रुक जाता था।

अवस्था वस्तुतः बड़ी गम्भीर थी। ज्यों २ लड़ाई बढ़ती जाती थी सर्कार दुर्बल होती जाती थी। यदि यही दशा कुछ दिनों चली तो यह दुर्बलता ही उसे ले बीतेगी। विद्रोहियों का बल और क्रोध बढ़ता जाता था। इस आपस की लड़ाई में देश का बल और धन क्षीण हो रहा था यदि कोई बाहरी थपेड़ा लगा तो संभलना कठिन हो जायगा। बड़ी कड़ी समस्या थी। युआन की प्रखर बुद्धि और उनके नीतिचातुर्य्य की कड़ी परीक्षा था। बहुतों का अनुमान था कि युआन की हार होगी।

नवम्बर के आरम्भ में डाक्टर वू तिंग-फ़ांग ने, जो पहिले चीन सर्कार की ओर से अमेरिका में राजदूत थे और अब प्रजातंत्र के परराष्ट्र विभाग के अध्यक्ष थे, युआन के नाम एक पत्र लिखा। इसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा सिवाय प्रजातंत्र के और कोई शासन नहीं चल सकता। उस पत्र का अन्तिम वाक्य यह है "हमारा गला बैठ गया है; हमारे पास अब आँसू भी नहीं रहे। अब और कुछ नहीं कहा जा सकता।

लगभग उसी समय उन्होंने हमारे विदेशी मित्रों' (Our foreign friends) के नाम एक पत्र लिखा। यह उन विदेशियों के नाम जो चीनी जनता से सहानुभूति रखते थे एक प्रकार की खुली चिट्ठी है पत्र अत्यन्त महत्व का है। इसके भाव में ओज और भाषा में तेज भरा है

The Manchu dynasty has by its benighted conceptions and barbaric learnings brought China to a position of degradation. The Foreign

Powers have pleaded for a diffusion of knowledge and the adoption of the sciences, but have failed.

The Manchu dynasty has been tried by a patient and peaceful peple for centuries and has been found more than wanting-

Its promises in tho past have provod delusions and snares. Its promises for the future can carry no weight, deserve no consideration and merit no trust

...........The hand of the people is now at the plough and they must of necessity push on to the uttermost end of the furrow. We ask our foreigen well-wishers to unite with us in our appeal to the prince-Regant to abdi cato and so end the strifo that is now shaking the land.

For our part our conduct is open to the full view of the world. We are fighting for what Britons fought in the days of old ; we are fighting for what Americans fought ; we are fighting for what every nation that is now worthy of the name has fought in its days. We are fighting to be men in the world ; we are fighting to cast off an oppressive, vicious and tyrranous rule that has beggared and disgraced China, obstructed and defied the foreign nations and set back the hands of the clock of the world."

मञ्चू राजवंश ने अपने अन्धकारमय विचारों और जंगली भावों से चीन को निन्द्य परिस्थिति में गिरा दिया है। परराष्ट्रों ने विद्याप्रचार और विज्ञान के अंगीकरण की प्रार्थना की परन्तु सफल न हुए।

सैकड़ों वर्षों से सन्तोषी और शांतिप्रिय प्रजा ने मञ्चू राजवंश की परीक्षा की है पर वह दोषपूर्ण ही पाया गया। उस ने भूत काल में जितने वचन दिये सब झूठे और धोखे निकले; भविष्य के लिये वह जो कुछ वचन दे रहा है वह भी तत्व-हीन है और उन का विश्वास नहीं किया जा सकता।

जनता ने अब तो हल हाथ में लिया है; अब तो अन्त तक खोदना ही होगा। हम अपने विदेशी मित्रों से प्रार्थना करते हैं कि वह भी हमारे साथ मिलकर राजाभिभावक (राजकुमार चुन) से यह प्रार्थना करें कि सम्राट् पद त्याग कर दें जिस से कि इस लड़ाई का, जो सारे देश को हिला रही है, अन्त हो जाय। हमारा आचरण प्रत्यक्ष है और सारा संसार उसे देख सकता है। हम उसी लिये लड़ रहे हैं जिस लिये पूर्वकाल में अंग्रेज लड़े थे; हम उसी लिये लड़ रहे हैं जिस लिये अमेरिकन लड़े थे; हम उसी लिये लड़ रहे हैं जिस लिये कि प्रत्येक जाति, जो अब जाति कहलाने योग्य है, अपने समय में लड़ी थी। हम संसार में मनुष्य होने के लिये लड़ रहे हैं; हम एक दुराचारी, दुराग्रही, प्रजापीड़क, शासन को दूर करने के लिये लड़ रहे हैं जिस ने चीन को निर्धन और अपमानित कर दिया है, परराष्ट्रों के मार्ग में वाधा डाला है और संसार की घड़ी की सुई पीछे कर दी है।"

वस्तुतः यह पत्र क्या था विद्रोहियों के मन्तव्यों की विज्ञप्ति थी। इस से यह पता लगता था कि चीनी जनता और उस के नेताओं का हृदय कैसा जल रहा था और उन को मन्चुओं के प्रति कितना क्रोध था। इस अग्नि से भस्म न होना मन्चुओं की शक्ति के बाहर था।

फिर भी युआन ने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया। राजाभिभावक

राजकुमार चुनसे लोग बहुत रुष्ट थे । वस्तुतः इस विचारे का इतना अपराध नहीं था। हाँ यह अवश्यमेव अपराध था कि यह पुराने पार्थियों के दबाव में आ जाते थे । जो कुछ हो अब इन को बलि देने का विचार किया गया। ६ दिसम्बर को राजमाता ने यह घोषित किया कि राजकुमार चुन ने त्यागपत्र दिया है और उनका पदत्याग स्वीकार भी कर लिया गया है। उसी घोषणा में यह भी लिखा था कि स्वयं राजकुमार बुरे व्यक्ति न थे पर उन की नीति दुर्बलता ही देश की आपत्तियों का कारण थी। इसलिये उन्होंने स्वयं अपने को अयोग्य समझकर पदत्याग कर दिया। उनको (५०,००० पचास सहस्र) तेल की पेंशन दे दी गयी। अन्त में जनता से शान्ति के पुनः स्थापन के लिये प्रार्थना भी थी।

बालक सम्राट् के लिये दो निरीक्षक या अभिभावक नियुक्त हुए। इनमें एक, शिहह्सू, तो मञ्चू दर्बारी थे; दूसरे, ह्सू शिह्चांग, चीनी और युआन के अनुयायी थे।

३री दिसम्बर को हांकाउ के अंग्रेजी कांसल की मध्यस्थता से यह निश्चय पाया कि युद्ध कुछ काल के लिये थम जाय। इसी क्षणिक शान्ति काल में यह निश्चय हुआ कि पन्द्रह दिनों के लिये लड़ाई बन्द रहे और इस बीच में यह स्थिर किया जाय कि किन शर्तों पर सन्धि हो सकती है।

चीन सर्कार की ओर से युआन का एक अनुयायी तांग शाओयि इस शान्तिसभा के लिये प्रतिनिधि चुना गया और विद्रोहियों ने डाक्टर वू तिंग-फांग को अपना प्रतिनिधि चुना। सर्कार चाहती थी कि सभा हांकाउ में हो पर विद्रोहियों के आग्रह करने पर शंघाइ में ही उसका होना निश्चय हुआ।

यह जो कुछ हुआ सब युआन के ही परिश्रम का फल था। कोई और नीतिज्ञ होता तो कभी इतना न कर पाता। एक तो युआन स्वयं बुद्धिमान थे और यह जानते थे कि कब नरम कब गरम होना चाहिये। दूसरे दोनों पक्ष उनको न्यूनाधिक आदर करते, तीसरे विदेशी राजदूतों में से प्रायः सभी को युआन पर विश्वास था।

चतुर्दश अध्याय।

राजसत्ता का अन्त

१८ दिसम्बर को शंघाइ के टाउन हाल में इस संधि परिषद् की पहिली बैठक हुई परन्तु इस बीच में कहीं २ लड़ाई फिर छिड़ गयी थी इस लिये स्थगित हो गयी। २० को यह फिर बैठी। उसी दिन इंगलैण्ड, फ्रांस, रूस, जर्मनी, अमेरिका और जापान के कांसलों ने अपनी २ सर्कारों की ओर से निवेदन किया कि इस पारस्पारिक झगड़े के जारी रहने से केवल चीन की ही नहीं वरन् विदेशियों की भी क्षति हो रही है। अतः उसको यथासम्भव शीघ्र ही बन्द करना चाहिये। यदि सच पूछा जाय तो विदेशियों की बहुत ही कम क्षति हुई थी, हाँ लड़ाई झगड़े से व्यापार तो कुछ न कुछ मन्द पड़ ही गया होगा, सो लड़ाई झगड़ा भी बहुत दीर्घ काल का नहीं, कोई पाँच ही महीने का था। परन्तु दुर्वल को परामर्श देना सरल है। सभी यूरोपियन राष्ट्रों ने घोर युद्ध करके सारी पृथ्वी को विपद्ग्रस्त कर दिया पर उनको कौन परामर्श देकर युद्ध से रोकता। युद्ध बन्द कराना बुरी बात नहीं है पर देश काल पात्र के अनुसार अच्छी बातें भी बुरी लगती हैं। बड़े राष्ट्र जब किसी दुर्वल राष्ट्र को परामर्श देते हैं तो वह धमकी के तुल्य होता है, और उसका मानना अनिवार्य्य सा ही होता है।

पहिला काम जो परिषद् ने किया वह शान्तिकाल को बढ़ाना था अर्थात् पन्द्रह दिनों के लिये जो लड़ाई बन्द कर दी गयी थी वह समय और बढ़ा दिया गया। अब शर्तों पर विचार होने लगा। ऐसे अवसरों

पर प्रायः यही होता है कि दोनों पक्ष अपनी २ शर्तें उपस्थित करते हैं फिर दोनों का मिलान करके जो बात उभयमान्य होती है वह निर्णीत हो जाती है। जो पक्ष प्रबलतर होता है उसकी बातें अधिक मानी जाती हैं।

पर यहाँ तो तर्क वितर्क का अवकाश ही नहीं था। राजप्रतिनिधि तांग शाओ-यि की शर्तों पर विचार किये जाने का अवसर ही नहीं आया। डाक्टर वू तिंग-फांग आरम्भ से ही अपनी बात पर दृढ़ थे, और उनकी बात ही क्या थी, उसका सारांश यह था कि चीन में प्रजातंत्र स्थापित होना चाहिये और राजसत्ता को सदा के लिये पद त्याग करना चाहिये। और छोटी २ शर्तें देखी जायँगी। पर जब तक प्रजातंत्र का स्थापित होना निश्चय न हो जाय तब तक शान्ति कदापि २ नहीं हो सकती। इस एक शर्त के मान लिये जाने पर और शर्तें निर्भर हैं।

बिचारा तांगशाओ-यि बड़ी विपत्ति में पड़ा। उसकी परिस्थिति एक हारे हुए राष्ट्र के प्रतिनिधि की सी हुई जिसे विजेता की सभी बातें माननी पड़ती हैं। यदि बातें मान ले तो विचार ही क्या हुआ, जिस काम अर्थात् राजसत्ता की रक्षा के लिये आये थे वह काम ही नहीं हुआ यदि नहीं मानते तो भी गयी बीती चीन सर्कार किस बूते पर और कितने दिन लड़ेगी ? अन्त में उसने अपनी ओर से डाक्टर फांग की शर्तें मान लीं परन्तु यह कहा कि पेकिंग से उत्तर आने पर मैं निश्चित उत्तर दूंगा।

पेकिंग में इस समाचार से बड़ी खलबली मची। चीनसर्कार के पास न तो रुपया था न सेना थी पर अपना अधिकार खोना किसे भाता है ? लोभ बुरा रोग है, वह सब कुछ भुला देता है। इस समय चीन सर्कार की दशा ठीक इस श्लोक के भाव से मिलती थीः—

लोभाविष्टो नरोवित्तं, वीक्षते न तु चापदम् ।
दुग्धं पश्यति मार्जारी, यथा न लगुडाहतिम् ॥

मन्चू दलने क्रुद्ध होकर तांग को राजद्रोही ठहराया। स्वयं यूआन

पर आपत्ति आ जाती पर उन्होंने यह कहकर पिण्ड छुड़ाया कि तांग ने जो कुछ किया है वह विना मुझ से पूछे किया है।

पर इन ठण्डी गर्मियों से क्या होना था। विद्रोही दल दिन रात अथक परिश्रम से अपनी स्थिति दृढ़ कर रहा था जिससे कि पुनः युद्ध छेड़ कर भी सर्कार को पिटना पड़ता। शंघाइ के शस्त्रागार में बराबर शस्त्र, बम, आदि ढल रहे थे, तेज्जिन-यूकोलाइन से भेजने के लिये सेना प्रस्तुत थी; समुद्र द्वारा चेंफू सेना भेजने का भी प्रबन्ध हो गया था। उधर सर्कार के पास जो कुछ रहा सहा बल था वह भी घटता जाता था।

इतना ही नहीं, प्रजातंत्रवादी शासन का भी प्रबंन्ध कर रहे थे। २१ दिसम्बर को १६ प्रान्तों के ३० प्रतिनिधि नैंकिंग में एकत्र हुए और इन लोगों ने अमेरिका के संयुक्त प्रान्त की शासन पद्धति के आधार पर चीनी शासन पद्धति निश्चय किया। २६ दिसम्बर को डाक्टर सुनयातसन सभापति चुने गये और प्राचीन चीनी तिथिक्रम के स्थान में पाश्चात्य तिथिक्रम को अनुकरण करना स्वीकृत हुआ। अतः १ जनवरी १६१२ चीनी प्रजातंत्र के प्रथम वर्ष के प्रथम मास की प्रथम तिथि हुई। इसी समय सभापति को शासन में सहायता देने के लिये नियमानुसार कैबिनेट की भी चुनाई हुई।

डाक्टर सुनयातसन स्पेशल ट्रेन से शंघाइ से नैंकिंग आये। उनके साथ उनके चीनी और जापानी सेक्रेटरी भी थे। तोप की सलामी द्वारा उनका स्वागत किया गया और सैनिक गारद साथ था सब से बढ़ कर स्वागत प्रजा का हर्ष था। जो मनुष्य जनता के हित के लिये काम करता है उसका यही पुरस्कार है। देश हितैषी के मार्ग में अनेक कण्टक हैं, विशेषतः जो मनुष्य अपने देश को दासत्व शृंखलासे मुक्त करने का प्रयत्न करता है उसके लिये कर्तव्यपथ कृपाण की धार है। इसी को देख कर कुछ लोग इस नीति का आश्रय लेते हैं—

न गणस्याग्रतो गच्छेत्, सिद्धे कार्य्ये समं फलम् ।
यदि कार्य्ये विपत्तिः स्यात्, मुखरस्तत्र हन्यते ॥

परन्तु वीर, मेधावी, पुरुष ऐसी नीति की ओर आंख उठा कर नहीं देखते । यँदि जनता की सेवा करनी है तो सुख क्या और दुःख क्या ? लोकहितसाधन पर प्राण भी निछावर हो जायँ तो क्या बड़ी बात हुई । ऐसा मनुष्य सदैव एक फ्रेंच विद्वान के निम्नलिखित वाक्य के अनुसार निर्भयता से अपने मन्तव्य प्रकाशित करता है और उनके लिये हथेली पर प्राण लिये फिरता है:—"अपने पर दोष लगने दो; जेल जाओ, अपराधी ठहराये जाओ, फाँसी पड़ो, परन्तु अपने मत को प्रकाशित करो । यह तुम्हारा अधिकार नहीं, कर्तव्य है ।"

ऐसा मनुष्य पुरस्कार नहीं चाहता परन्तु फिर भी यदि उसकी कर्तव्यपरायणता का कोई पुरस्कार हो सकता है तो यही कि जिस जनता के लिये उसने सर्वस्व न्योछावर कर दिया वह उसकी आभारी हो । डाक्टर सुनने लगभग २० वर्ष तक भर्तृहरि के इस कथन को चरितार्थ किया था—

क्वचिद्भूमौशय्या क्वचिदपि च पर्य्यंक शयनम्,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कंथाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्य्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् ॥

आज उनका प्रयत्न सफल हुआ था । यद्यपि नाम को अभी राजसत्ता अवशिष्ट थी पर वस्तुतः अब चीन में प्रजातंत्र का ही अधिकार था । मञ्चू शासन मृतप्राय था । जिस देश के लिये उन्होंने कठिन तपस्या की थी उसने भी उनका समुचित आदर करके अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया । आत्मबलि का प्रसाद प्रत्यक्ष मिल गया ।

उन्होंने उसी दिन मञ्चू शासन को दूर करने की शपथ खाई और नवीन शासन की नीति का कथन करते हुए यह आशा प्रकट की कि इस नीति के द्वारा चीन को पृथ्वी के अन्य राष्ट्रों के तुल्य स्थान मिलेगा ।

इस शासन की ओर से एक दैनिक गजट निकलता था; उसके द्वारा सर्वसाधारण को इसके मन्तव्यों का परिज्ञान हो जाता था। इन लोगों ने तार द्वारा पेकिंग को सूचित किया कि यदि सम्राट् पदत्याग कर दें तो उनको जेहोल में रहने का स्थान दिया जायगा और समुचित पेंशन का प्रबन्ध कर दिया जायगा। उनकी प्रतिष्ठा का पूरा ध्यान रक्खा जायगा।

राजवंश के अन्य राजकुमारादि के लिये भी समुचित पोषण-प्रबन्ध कर दिया जायगा।

इसके साथ ही तटस्थ राष्ट्रों के नाम एक विज्ञप्ति निकाली गयी। इसमें पुराने शासन के दोष दिखलाये गये और नये शासन की नीति का दिग्दर्शन कराया गया। उसका अन्तिम वाक्य यह था :—

"With the message of peace and good will, the Republic of China cherishes the hope of being admitted to the family of nations not merely to share their rights and privileges but also to co-operate with them in the great and noble task called for in the up-building of the civilization of the world."

"शान्ति और सद्भाव का सन्देशा भेज कर चीनी प्रजातंत्र यह आशा करता है कि वह राष्ट्रों के कुटुम्ब में सम्मिलित किया जायगा, केवल इसी लिये नहीं कि उनके अधिकारी और स्वत्वों में सहभागी हो प्रत्युत इसलिये कि पृथ्वी की सभ्यता के उन्नत करने के महान् और श्रेष्ठ काम में उनका सहयोगी बने।"

यह बातें युआन को कब अच्छी लग सकती थीं। जितना ही प्रजातंत्र वादियों का प्रभाव चीन में या चीन के बाहर बढ़ता था उतना ही सर्कार का प्रभाव कम होता था। इस लिये वह चाहते थे कि किसी

भाँति स्वयं उनको अपना दबाव डालने का अवसर मिले। इसके लिये उन्होंने यह युक्ति निकाली कि उनके प्रतिनिधि तांग ने जो शर्तें स्वीकार की थीं उनको उन्हों ने अस्वीकार कर दिया। इस पर तांग ने त्याग-पत्र दे दिया। युआन ने उसे स्वीकार करके डाक्टर फांग को लिखा कि हमारे साथ सीधे तार के द्वारा शर्तें निश्चय कर लीजिये।

पर डाक्टर फांग अनुभवी नीतिज्ञ थे। वह इस चाल में कहां फँसने वाले थे। उन्होंने लिख भेजा कि जिस समय तांगशाओ-यि नियत किये गये थे उस समय चीन सर्कार ने उनको पूर्ण अधिकार दे रक्खा था अतः जो २ निश्चय उनके साथ हो चुका है वह पलट नहीं सकता। दूसरे, संधि-परिषदों में कभी तार द्वारा काम नहीं होता। इस में असुविधा भी होती है, युआन की इच्छा हो तो वह स्वयं शंघाई आ जायँ।

इस राजनैतिक हार के पीछे, युआन ने अपने गिरते पक्ष को संभालने की दूसरी युक्ति सोची। २८ दिसम्बर को सम्राट् की ओर से नियमतः चुनी हुई पार्लिमेन्ट के लिये घोषणा की गयी। इससे भी कोई लाभ न हुआ, उलटे सरकार की दुर्बलता ही प्रकट हुई। डाक्टर सुनयात सन के पक्ष ने ऐसी पार्लिमेण्ट में योग देना अस्वीकार किया जो सर्कार के बनाये नियमों के अनुसार चुनी गयी हो। फिर इस बिषय में और भी कई मत भेद थे। युआन चाहते थे कि यह पार्लिमेण्ट पेकिंग या तेज्जिन में बैठे; विद्रोही इसे नैंकिंग या शंघाई में रखना चाहते थे। प्रभाव तो विद्रोहियों का बढ़ा हुआ था ही, परिणाम यह हुआ कि पार्लिमेण्ट एकत्र ही न हो पायी। इन मत भेदों को देख कर कुछ लोगों की यह सम्मति हो रही थी कि चीन, उत्तरीय और दक्षिणीय, दो भागों में बांट दिया जाय उत्तरीय भाग की राजधानी पेकिंग रहे और उसमें नियमित राजसत्ता शासन करे; दक्षिणीय भाग की राजधानी नैकिंग या शंघाई हो और उसमें प्रजातंत्रीय शासन पद्धति हो।

परन्तु अब उत्तर चीन भी पहिले की भांति राजभक्त नहीं रह गया था। वहां भी इतर दल का प्रभाव बढ़ रहा था युआन के पूर्ण प्रयत्न करने पर भी वहां वैप्लविक विचार फैल रहे थे। इसमें युनान का दोष या उनके प्रबन्ध का अपराध न था। इस प्रकार के सार्वजनिक आन्दोलन ईश्वर की इच्छा से परिचालित होते हैं। उनको प्रणीत करने वाली दैवी शक्ति मनुष्यों की इच्छा अनिच्छा की चिन्ता नहीं करती। ऐसे प्रवाह का कोई विरोध कर नहीं सकता, जो नेता कहलाता है वह स्वयं इसके साथ वह रहा है, जो प्रतिरोधी होता है वह आप नष्ट हो जाता है।

अस्तु, लोगों में यह किम्वदन्ती फैल रही थी कि युआन कहीं बाहर से कर्ज लेकर प्रजातंत्र का विरोध करना चाहते हैं लोग इस बात से रुष्ट थे। १६ जनवरी को उनकी गाड़ी पर तीन बम फेंके गये वह तो बच गये पर लगभग २० दूसरे मनुष्य घायल हुए, जिन में से कुछ मर भी गये। बम फेंकने वाले पकड़े गये और उन्हों ने अपने को विद्रोही दल का सदस्य बतलाया, परन्तु डाक्टर सुनयात सन ने इस बात पर खेद प्रकट किया और युआन के पास सहानुभूतिसूचक तार भेजा। इसी प्रकार २७ जनवरी को तेज्जिन के गवर्नर जनरल चांग हुआइ-चिह, पर बम फेंका गया पर वह भी बच गये।

इसी अवसर पर सर्कार ने युआन को मार्किस की उपाधि देनी चाही पर उन्होंने अपने को किसी भाँति बचा लिया।

इधर यह बातें हो रही थीं उधर संधि परिषत् का काम वन्द था पर अब वह देर तक बन्द नहीं रह सकता था। जितने काल के लिये लड़ाई बन्द की गयी थी वह अब समाप्त होने वाला था। अब दो ही बातें हो सकती थीं, या तो फिर से युद्ध हो या संधि की शर्तें निश्चित की जायँ और वह भी शीघ्र।

युद्ध की सामर्थ्य सर्कार में थी हीं नहीं, उत्तर की समस्त सर्कारी सेनाओं के प्रधान सेनाध्यक्ष, जनरल तुआन चि-जुइ, प्रभृति कई गएय

मान्य व्यक्तियों ने एक प्रार्थना पत्र द्वारा सम्राट् को राजत्याग का परामर्श दिया था ।

अतः संधि की शर्तों का विचार रह गया । इस विचार में भी मूल बात सम्राट् का पदत्याग, राजसत्ता का निष्कासन और प्रजातंत्र का संस्थापन, अतर्क्य थी । जो कुछ तर्क वितर्क होना था वह ब्योरे की बातों पर, अर्थात् सम्राट् कब और कैसे पदत्याग करें, उनके और राजवंश के लिये क्या प्रबन्ध हो, इत्यादि इस विषय में विद्रोही स्वयं बड़ी उदारता दिखला रहे थे । वह राजवंश को अनावश्यक कष्ट नहीं देना चाहते थे । इतना ही नहीं डाक्टर सुनयात सन ने अस्थायी शासन* के सभापतित्व का पदत्याग कर वह पद युआन को दिलवाने की इच्छा प्रकट की ।

युआन की यह इच्छा थी कि सम्राट् के पृथक होते ही विद्रोहियों ने जो अस्थायी शासन बनाया था वह भी पृथक् हो जाय और स्वयं उनको स्थायी शासन सङ्गठित करने का अधिकार मिल जाय । जब दूसरे पक्ष को उनकी इस इच्छा का पता लगा तो उन्हों ने यह शर्तें बढ़ा दीं ।

(१) कोई मञ्चू अस्थायी शासनमें कोई स्थान नहीं पा सकता ।

(२) अस्थायी शासनकी राजधानी पेकिंगमें न होगी ।

(३) जब तक कि परराष्ट्र प्रजातंत्रके स्थायी शासन को अङ्गीकार न कर लें और देश में शान्ति स्थापित न हो जाय तब तक युआन को अस्थायी शासन में कोई स्थान न मिलेगा ।

डाक्टर सुनयातसन और उनके अनुयाइयों का यह काम कुछ अन्याय्य नहीं था । सब लोगोंके पृथक् हो जाने पर युआन न जाने

नोट—* मञ्चू सर्कार के उठ जाने पर चीन का शासन प्रजा तंत्र के हाथ में जाता पर अभी प्रजातंत्र का संगठन पक्का नहीं था । कुल १९ ही प्रान्त सम्मिलित हुए थे और युद्धके कारण प्रतिनिधि भी ठीक २ नहीं चुने जा सकते थे, शान्ति स्थापित होने पर पुनः व्यापक चुनाव होना आवश्यक था । तब तक के शासन को 'अस्थायी शासन' कहा गया है ।

कैसा अस्थायी शासन बनाते । उन के मत का भी तो कुछ निश्चय नहीं था । एक समय वह स्वर्गीय सम्राट् क्वांगह्यू के उदार प्रस्तावों को मिट्टी में मिला चुके थे । अब भी वह राजसत्ताके पक्षपाती थे ही ; अधिक से अधिक यह कहा जा सकता था कि वह नरम विचारों के मानने वाले थे पर ऐसे व्यक्ति का क्या ठिकाना । इन बातों का उत्तर युआन ने यह दिया कि मैं अपने लिये कुछ नहीं चाहता; जो कुछ कह रहा हूं वह लोकहित के लिये कह रहा हूं । इस पर उन से यह कहा गया कि यदि ऐसा है तो खुल कर प्रजातंत्रवादियों में मिल जाओ । पहिले तो उन्हों ने आनाकानी की पर अन्तमें ऐसा ही करना पड़ा और उन्होंने अपने को प्रजातंत्रके सिद्धान्तों का अनुयायी घोषित किया ।

अब राजसत्ताके लिये कोई सहारा न रहा । युआन का ही बड़ा भरोसा था, सो वह भी हाथ से जाता रहा । अब कुशल इसी में था कि सम्राट् प्रतिष्ठापूर्वक राजकार्य्यसे पृथक् हो जायँ ।

१२ फर्वरी (१९१२) को सम्राट् की ओर से अन्तिम घोषणाएं निकलीं । इनपर युआन और कैबिनेट के अन्य ६ सदस्यों के हस्ताक्षर थे । घोषणाओं में दिखलाया गया था कि सम्राट् ने श्रीमती राजमाता की आज्ञानुसार उनको निकाला था ।

प्रथम घोषणा यह थी :—

"In consequence of the uprising of the republican army, to which the people of the provinces responded, the Empire seathed like a boiling cauldron and the people were plunged into misery. Yuan, therefore, commanded the despatch of commissioners to confer with the republicans with a view to a National assembly being formed to decide upon the form of government. Months elapsed without

a settlement being reached and it is nowcer dent that the majority of the people are in favour of a republic. From the preference that is in the people's hearts, the will of Heaven is discernible. How could we oppose the desire of millions for the glory of one family? Therefore we, the dowager Empress and the Emperor, hereby vest the sovereignty in the people. Let Yuan Shihkai organise with full powers a Provisional Republican Government and confer with the Republicans as to the methods of union that will assure peace to the Empire, thus forming a great republic by the union of Manchus Chinese, Mongols, Mohommedans and Tibetans."

"वैप्लविक सेना के, जिसके साथ कि प्रान्तों की प्रजा भी सहमत थी, विद्रोह के कारण साम्राज्य उबलती हुई कड़ाही की भांति आन्दोलित हो रहा था और प्रजा कष्टापन्न हो रही थी। इसलिये युआन ने वैप्लविकों के पास प्रतिनिधि भेजे कि वह एक जातीय सभा का स्थापित होना निश्चय करें जो भावी शासन पद्धति पर विचार करे। महीनों बीत गये पर कुछ निश्चय न हुआ और अब यह स्पष्ट है कि अधिकांश जनता प्रजातंत्र के पक्ष में है। लोगों की हार्दिक इच्छा से ईश्वर की इच्छा का पता लगता है। मैं एक वंश की बड़ाई के लिये करोड़ों की इच्छा का कैसे विरोध कर सकता हूं? इसलिये हम, राजमाता और मैं, देश का स्वाम्य प्रजा को देते हैं। युआन को चाहिये कि एक अस्थायी शासन संगठित करें और प्रजातंत्रवादियों से मिल कर ऐक्य के ऐसे उपाय निकालें जिनसे साम्राज्य में शान्ति फैले और मञ्चू, चीनी, मंगोल, मुसलमान, तिब्बती के मेल से एक महान् प्रजातंत्र बने।

दूसरी घोषणा इस प्रकार थी :—

'According to the Cabinets memorial embodying the courteous treatment proposed by the people's army, they undertake the responsibility of perpetual sacrifices befor the Imperial ancestral temples and mausolea and also the completion of Kwang-Hsu's mausoleum. The Emperor is understood to resign only his political power, while the Imperial title is not abolished and the Imperial kinsmen—Manchus, Mongols, Mohomedans and Tibetans-will endeavour to fuse with the Chinese and to renounce racial differences & prejudicesi. Our sincere hope is that peace will be restored and that happiness will be enjoyed under the Republic."

"केबिनेट के निवेदन के अनुसार, जिससे कि उस सुशील आचरण का पता चलता है जो सार्वजनिक सेना दिखलाना चाहती है, वह (प्रजा) अपने ऊपर इस बात का भार लेती है कि राजवंश के पुराने मन्दिरों और छतरियों * पर बराबर पूजा होती रहेगी और क्वांग हू की छतरी पूरी कर दी जायगी। सम्राट् ने केवल अपना राजनैतिक अधिकार त्याग दिया है। सम्राट् की उपाधि ज्यों की त्यों रहेगी। राजवंश के सम्बन्धी मञ्चू, मंगोल, मुसलान और तिब्बतियों को चाहिये कि चीनियों से मिल जायँ और सारे जातिभेदों को छोड़ दें। हमारी सच्ची आशा है कि शान्ति पुनः स्थापित होगी और प्रजातंत्र के शासन में लोगों को सुख मिलेगा।"

* छतरी॥ समाधिमन्दिर

तीसरी घोषणा द्वारा समस्त वायसरायों और सूबेदारों को सूचित किया गया कि जनता को प्रसन्न करने के लिये सम्राट् ने राजनैतिक अधिकारों को त्याग दिया ।

यह निश्चय हुआ कि सम्राट् जो अभी तक ताचिंग (महान् पवित्र) कहलाते थे अब केवल चिंग (पवित्र) कहलायेंगे और जिन लोगोंको उपाधियां मिली थीं वह केवल वर्तमान उपाधि-धारियोंके जीवन भर मानी जायंगी । पीछे, सब सामान्य चीनी नागरिक हो जायंगे ।

राजवंशके व्ययके लिये चालीस लाख तेल प्रतिवर्ष दिया जाना निश्चित हुआ । यह भी निश्चित हुआ कि सिक्कोंका सुधार हो जाने पर चालीस लाख तेलके स्थानमें चालीस लाख डालर दिया जाया करेगा ।

बस आजसे चीनमें राजसत्ताका अन्त हो गया, सम्राट्की उपाधि रह गयी पर उस से क्या होता है । जो व्यक्ति सम्राट् कहलाता था वह जनतासे पेंशन पाता था । चीनी प्रजाने एक साथही दो कार्य्य सिद्ध कर डाले । एक तो उन्होंने अपने देशसे विदेशी शासन उठा दिया-मञ्चू आधिपत्यको हटा कर अपनेको पूर्णतया स्वतंत्र बना लिया । दूसरे, उन्होंने चीनसे राजसत्ता उठा कर चीनमें प्रजातंत्र स्थापित कर लिया । पाश्चात्य देशोंका यह कहना है कि प्राच्य देशों के लोग प्रजातंत्रके सिद्धान्तोंके अनुसार नहीं चल सकते । वह बिना राजसत्ता के रह ही नहीं सकते । जापान में भी राजसत्ता का परित्याग नहीं किया था । चीन ने एक मात्र प्रजातंत्र स्थापित कर के एक बड़े भारी प्रयोगका अनुष्ठान अपने ऊपर लिया था जिसके साफल्य से समस्त प्राच्य देशोंको शिक्षा मिल सकती थी । यह प्रजातंत्र स्थापित भी विचित्ररूप से हुआ था । अन्य देशोंमें प्रजा लड़ भिड़ कर राजा, महाराजा, बादशाह को मार भगाती है और प्रजातंत्र स्थापित करती है । यहां, लड़ाई हुई सही पर अन्त में मेल हो गया और स्वयं सम्राट् ने राजघोषणा द्वारा राजनैतिक अधिकारों का त्याग

करके प्रजातंत्र स्थापित किया और अपने मंत्री युआनको प्रजातंत्रके मन्तव्योंके अनुसार अस्थायी शासन बनानेकी आज्ञा दी। ऐसा पृथ्वी के इतिहास में स्यात् कभी कहीं नहीं हुआ। इस बात ने बहुत कुछ पारस्पारिक द्वेष मिटा दिया और झगडेकी सम्भावना रोक दी, क्योंकि प्रान्तिक शासकोंको, जो प्रजातंत्र का विरोध करना कदाचित् अपना कर्तव्य समझते, अब राजाज्ञा मिल गयी थी कि वह उसके अधीन रह कर काम करें।

पञ्चदश अध्याय

प्रजातंत्र की स्थापना।

राजसत्ता तो उठ गयी पर अभी प्रजातंत्र की दृढ़ स्थापना नहीं हुई थी। प्रायः प्रत्येक प्रान्त में स्वतंत्र अस्थायी शासन स्थापित हो गया था पर अभी यह शासन मिल कर काम नहीं करते थे। प्रधान अस्थायी शासन ने डाक्टर सुनयात सन को सभापति चुन लिया था पर अभी इस चुनाव को सारे देश ने स्वीकार नहीं किया था, करने का अवकाश ही नहीं मिला था। परराष्ट्रों ने भी अभी प्रजातंत्र को अंगीकार नहीं किया था। यों तो जब राजसत्ता का राजनैतिक जगत् से निर्वासन हो चुका था तब प्रजातंत्र सर्वमान्य हो ही गया और उसका अंगीकृत होना बाध्य था पर जब तक यह सब औपचारिक रूप से न हो जाय, उसकी स्थापना असन्दिग्ध नहीं कही जा सकती।

सम्राट् की अन्तिम घोषणा के प्रकाशित होने पर युआन ने डाक्टर सुन के पास यह पत्र भेजा "A Republic is the best form of Government. The whole world admits this... ......That in a simple bound we have passed from autocracy to republicanism is really the outcome of the many years, of strenuous efforts exerted by you all and is the greatest blessing to the people,.....Henceforth we shall exert our utmost strength to move forward in progress

until we reach perfection." "प्रजातंत्र ही शासन का सर्वश्रेष्ठ रूप है। सारा संसार इस बात को मानता है। हम लोगों का एक ही छलाँग में स्वेच्छाचार से प्रजातंत्र तक पहुँच जाना उस कठिन परिश्रम का परिणाम है जो आप लोग वर्षों से करते आ रहे हैं और जनता के लिये अत्यन्त सुखप्रद है। अब से जब तक हम उन्नति के शिखर तक न पहुँच जायँगे तब तक अपनी पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करेंगे।"

इन सब बातों से युआन के प्रजातंत्रवादी होने में तो कोई सन्देह नहीं रहा अब यही प्रश्न रहा कि नये शासन में उनको क्या स्थान दिया जाय। इस विषय में भी विशेष विवाद का स्थान नहीं था। युआन को यदि कोई पद दिया जा सकता था तो सभापति का। उनकी योग्यता, उनका प्रभाव, यह सब इसी बात की अपेक्षा करते थे। सम्राट् की अन्तिम घोषणा भी जो उपचारतः प्रजातंत्र की जन्मदात्री थी, यही इंगित कर रही थी।

नवीन दल नैंकिंग को राजधानी बनाना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि युआन वहीं आकर सभापति का पद ग्रहण करें, परन्तु उस समय उत्तर में बड़ी अशान्ति थी। यदि पेकिंग से शासन का केन्द्र हटा लिया जाता तो बड़ी गड़बड़ मचती। अतः यही निश्चय हुआ कि पेकिंग ही पूर्व-बत् राजधानी रहे।

१४ फर्वरी को नैंकिंग में एक बड़े महत्त्व का उत्सव मनाया गया। उसी नगर में मिंग वंश की जो चीन का अन्तिम चीनी राजवंश था, समाधियाँ थीं। उक्त तिथि को बड़े समारोह के साथ उनकी पूजा की गयी। सारे नगर में एक प्रकार का तिहवार मनाया गया। सहस्रों मनुष्यों के साथ डाक्टर सुनयात सन समाधि मंदिर में गये। वहाँ मिंग-वंश के संस्थापक सम्राट् हुंग वू का एक पुराना चित्र था। चित्र के पास एक चौकी थी जो सम्राट् के सिंहासन के स्थान में थी। इसी चौकी के सामने सब लोगों ने नंगे सिर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। डाक्टर

सुनने सारे देश की ओर से सम्राट् के सामने धूप आदि सुगन्धित द्रव्य जलाये और उनके आत्मा से देश की भावी वैभव और समुन्नति के लिये प्रार्थना की। फिर उन्होंने एक छोटी सी वक्तृता दी। उसमें उन्होंने इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि २६० वर्ष के पीछे देश ने अपने खोये हुए स्वातंत्र्य को फिर से पाया। उस समय उनका स्वर गद्‌गद् हो रहा था और उनकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। समस्त प्रेक्षकसमाज एक विलक्षण भाव के वशीभूत हो गया था; हृदय के गम्भीर भावों ने लोगों को कुछ काल के लिये स्तब्ध कर दिया था; वह नीरवावस्था जिस भाव को व्यक्त कर रही थी उसका द्योतन शब्दों द्वारा होना असम्भव था। चीन के लोग प्रायः अनीश्वरवादी होते हैं पर इस अवसर पर प्रायः सारा देश अपने सभापति के मुख से पितृ-रूपी ईश्वर के चरण कमलों में भक्ति-भावाञ्जलि समर्पित कर रहा था।

इस के दूसरे दिन, अर्थात् १५ को, डाक्टर सुन ने सभापति का पद त्याग दिया। हम इस महापुरुष की प्रशंसा पहिले भी कर चुके हैं। सुन सा स्वार्थ-त्यागी नेता बड़े भाग्य से किसी देश को मिलता है। कोई मनुष्य धन, कोई वैभव, कोई उपाधि, कोई पदवी की लालसा से देश-सेवा में लगता है। जो लोग और कुछ नहीं चाहते वह भी यश के भूखे होते हैं पर जो केवल निष्काम भाव से लोकसेवा में रत होता है वह मनुष्य नहीं, देवकल्प है। जो कर्तव्यमिति भाव से कर्म्ममार्ग का अनुसरण करता है वह गीता के निम्न श्लोकों का पूरा पालन कर रहा है।

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भू, र्मा ते संगोऽस्त्वकर्म्मणि॥
यदृच्छा लाभ सन्तुष्टो, द्वन्द्वातीतो विमत्सर।
समः सिद्धावसिद्धौ च, कृत्वापि न निबध्यते॥

ऐसा मनुष्य चाहे किसी देश का निवासी हो, चाहे किसी सम्प्रदाय

का अनुयायी हो, सर्वमान्य है। डाक्टर सुन इसाई होते हुए भी पूर्ण कर्म्मयोगी थे।

अठारह वीस बर्ष तक देशके लिये अथक परिश्रम और कठिन तपस्या के पीछे यह दिन आया था—चीन से विदेशी शासन निकल गया और प्रजातंत्र स्थापित हो गया! जनता ने उनको सभापति चुना पर उनको इसका लोभ न था। जिसमें देशका कल्याण हो वही मार्ग उनका इष्ट था। उन्होंने देखा कि बिना युआनको सभापति बनाये शान्ति न होगी, मञ्चू, मंगोल, पुराने कर्म्मचारी, आदि अनुदार मनुष्य युआन को ही चाहते थे यद्यपि चीनियों की अपेक्षा उनका बल कम था फिर भी उनकी इच्छा का विरोध होने से उपद्रव का होना सम्भव था। युआन स्वयं महत्वाकांक्षी थे। यदि उनको उच्चतम पद न मिला तो वह स्वयं असन्तोष का केन्द्र बन जाते। परराष्ट्रों में भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। यह राष्ट्र चीनके नवीन दल से घबराते थे। इनको भय था कि नवीन विचारों की बैदयुत शक्ति उन सब अधिकारों और स्वत्वोंको नष्ट कर देगी जिन को इन राष्ट्रों की बलयुक्त तृष्णा ने दुर्बल मञ्चू शासन को दबा कर प्राप्त किया था। उनका यह भय कुछ २ ठीक भी था। नवीन विचारों में सत्य और उत्साह का आधिक्य होता है; पुराने विचार अनुभव अर्थात् संसारी ज्ञानसे युक्त होते हैं। इस प्रकार का अनुभवी पुरुष प्रत्यक्ष लाभ और शान्ति के लिये अवसर पर औचित्या-नौचित्य को पूरा २ नहीं देखता। उसका नियम होता है 'जो बनि आवैं सहज में, ताही में चित देय', नवीन विचारों वाला पुरुष सिद्धान्त के लिये सब कुछ त्याग देता है—वह सत्य और न्याय का निरादर सहन नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति प्रकृत्या भयप्रद होता है। इसी लिये परराष्ट्र नवीन दल से घबराते थे। युआन को शासन और राजनीति का अनुभव भी था। इसी लिये डाक्टर सुन ने उनको सभापति बनाना उचित समझा। उनके पद त्याग करने पर युआन सभापति चुने गये।

सारे चीनमें कहीं किसीने इस चुनाव पर आक्षेप न किया। पृथ्वी के इतिहास में यह इस प्रकार का दूसरा उदाहरण था। जब अमेरिका स्वतंत्र हुआ था तब इसी प्रकार सर्व सम्मतिसे जार्ज वाशिंगटन सभापति चुने गये थे।

२६ फर्वरी को एक छोटी सी दुर्घटना हो गयी। अब इतनी सेना की आवश्यकता तो थी ही नहीं, बहुत सी पल्टने तोड़ दी गयीं। इस पर कुछ सिपाहियोंने बलवा कर दिया। उन्होंने आग लगाना और लूटना आरम्भ किया। पेकिंग में अन्धेर मच गया। तेन्जिन में टकसाल नष्ट कर दी गयी। अन्य नगरोंमें भी कुछ न कुछ उपद्रव हुआ, पर युआन की दृढ़ता से शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो गयी। सैनिक विधान की घोषणा की गयी और कड़ाई से काम लिया गया। सैकड़ों सिपाही मारे गये। परिणाम यह हुआ कि बलवा शीघ्र ही ठण्डा हो गया।

१० मार्चको पेकिंगके वाइवू यू हालमें यूआनने सभापतिका पद नियमतः ग्रहण किया। सभी राजनैतिक दलोंके लोग उपस्थित थे। बडे सामरोहके साथ वह उत्सव भी मनाया गया। पद ग्रहण करते समय उन्होंने यह शपथ खायी—

Since the Republic has been established, many works now have to be performed. I shall endeavour faithfully to develope the Republic, to sweep away the disadvantages attached to absolute monarchy, to observe the law of the constitution, to increase the welfare of the country, to cement together a strong nation which shall embrace all five races. When the National Assembly electsa permanent President, I shall retire. This I swear before the Chinese Republic."

प्रजातंत्र के स्थापित हो जाने से अब कई काम करने होंगे। मैं प्रजातंत्र को समुन्नत बनाने, स्वेच्छाचारी राजसत्ता की हानियों को दूर करने, शासन पद्धति के विधानों का पालन करने, देश के अभ्युदय को बढ़ाने, पाँचो जातियों (*) से युक्त प्रबल राष्ट्र को संगठित करने, का पूर्ण प्रयत्न करूँगा। जब जातीय सभा स्थायी सभापति चुनेगी, मैं अलग हो जाऊँगा।(*) मैं चीनी प्रजातंत्र के सामने इस बात की शपथ खाता हूँ।"

इस के पीछे दो लामों (बौद्ध साधुओं) ने युआन को बुद्ध की दो स्वर्ण प्रतिमाएँ दीं।

इसी समय नवीन विचारों के प्राचुर्य्य का एक विलक्षण प्रमाण मिला। बहुत सी चीनी स्त्रियां यकायक जातीय सभा में घुस आयीं। पुलिस ने रोकना चाहा पर इन्हों ने उसे भी पीटा और द्वार खिड़की आदिक तोड़ डाला। सेना बुलानी पड़ी पर वह इतने पर भी न टलीं। सभा के सदस्य विचारे घबराये कि कहीं हमारी भी दुर्गति न हो। अतः उन्होंने एक मन्तव्य पास किया कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर राजनैतिक अधिकार दिये जायँ। इसी लिये इन स्त्रियों ने आक्रमण किया था। मन्तव्य स्वीकृत होने पर वे आप ही शान्ति से चली गयीं। इस अस्थायी शासन में केवल जातीय सभा में प्रस्ताव होने से तो कोई पक्का बिधान बन नहीं सकता था। इस बात को सभा के सदस्य भली भाँति जानते थे पर उस समय उन्होंने इसी युक्ति से अपनी किसी प्रकार से रक्षा की।

जैसा कि युआन ने शपथ खाते समय कहा था, प्रजातंत्र के स्थापित होने से, कई कामों के करने की आवश्यकता आ पड़ी। केवल सृष्टि से काम नहीं चलता--पालन और संरक्षण भी बड़ा कठिन काम है।

* पाँच जाति = चीनी, मञ्चू, मङ्गोल, तिब्बती, मुसलमान।

* अभी चीन में अस्थायी शासन था, अतः युआन भी अस्थायी सभापति थे।

पर राष्ट्रों ने भी प्रजातंत्र को अंगीकार कर लिया। अमेरिका इस काम में अग्रसर हुआ पर इन राष्ट्रों के सामने चीन के महत्व को बनाये रखना सरल कार्य्य न था। युआन के शब्दों में, चीन एक ही छलांग में स्वेच्छाचारी राजसत्ता से प्रजातंत्र तक पहुंचा था। उसको इस प्रकार के शासन का किंचिन्मात्र भी अनुभव न था। योरप, अमेरिका, जापान सभी प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। इन में ऐसा एक भी न था जो चीन का सच्चा मित्र होता। योरप और अमेरिका के गोरे राष्ट्रों को 'यलो पेरिल' या 'एसियाटिक पेरिल' (Yellew Peril या Asiatic Peril) का भूत सता रहा था। वह समझते थे कि शीघ्र ही एशिया की जातियां समुन्नत होकर गोरे राष्ट्रों का सामना करेंगी. योरप की जन संख्या एशिया से कम है फिर योरप के मनुष्य एशियावासियों के बराबर परिश्रमी और सहिष्णु भी नहीं होते। एशियावालों के हृदय भी उन अत्याचारोंके कारण पक रहे हैं जो इधर सौ सवा सौ वर्षों से गोरी जातियां करती आ रही हैं। अतः जिस समय इनमें ऐक्य आदि सद्गुण आ जायँगे उस समय गोरी जातियां इन के सामने कदापि न ठहर सकेंगी। इस लिये जब यह लोग किसी एशियन जाति को जाग्रत होते देखते तो इनका हृदय कांप उठता था। यह कहना कठिन है कि एशियन जातियों के हृदय में ऐसे भाव और ऐसी कामनाएँ हैं या नहीं ; यदि हों, तो कोई ऐसा बड़ा अनौचित्य भी नहीं है, क्योंकि उन्नत होने का प्रत्येक जाति को अधिकार है। पर बात तो यह है कि "चोर,का जी आधा"—गोरी जातियों का स्वार्थमय व्यवहार और उन की अनुदार तृष्णा ही उन को भयभीत करती है ; वह डरती रहती हैं कि एसिया वाले शीघ्र ही उनको दण्ड देने के लिये खड़े होंगे।

जापान से भी कोई आशा नहीं की जा सकती थी। वह एशियाई देश है और चीन से ही उस को पूर्वकाल में इस सभ्यता की भीख मिली थी। इस समय भी चीन से मिल कर रहने में उसका असीम लाभ हो सकता

था पर उसने योरपसे कुछ ऐसा गुरूमंत्र लिया था कि उसे एशियन नीति-विधान भाता ही न था।

कोई राष्ट्र हो, उसकी जनता ही उसकी शक्ति का भण्डार होती है। अतः चीनी प्रजातंत्र को भी चीनी प्रजा पर ही निर्भर रहना था। प्रजा में भी कई दल थे। अभी मञ्चू मंगोल, आदि की महत्त्वाकांक्षा मर नहीं गयी थी। उन को चीनी प्रजा में मिला कर जलदुग्धवत् एक करना था। उत्तर और दक्षिण में भी गहिरा मत भेद था, उस को यथासम्भव शीघ्र ही दूर करना था।

प्रजातंत्र के प्रधान पुरुष इसी चिन्ता में मग्न रहते थे। उन्होंने राष्ट्र के झण्डे को जो रूप दिया था उससे ही उन के विचारों का पता चलता है। झण्डे का रूप यह था।
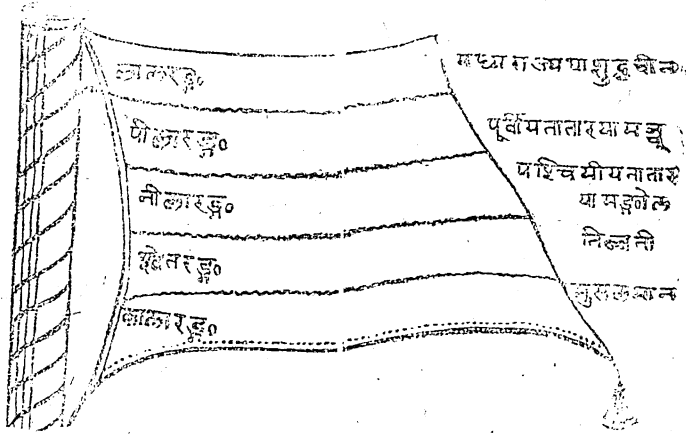
चीन की प्रधान जाति होने से सब से ऊपर चीनियों को स्थान दिया गया, मञ्चुओं और मंगोलों को उनके २ राजनैतिक महत्व के अनुसार स्थान दिया गया, तिब्बत में बौद्ध धर्म्म के प्रधान आचार्य्य दलाई लामा रहते हैं इस लिये मंगोलों के पीछे तिब्बत को स्थान मिला। शेष स्थान

मुसल्मानों को दिया गया । इन पांचों जातियों के कारण प्रजातंत्र के लिये इस प्रकार का पँचरंगा झण्डा चुना गया । अब इस नूतन राष्ट्र के प्रत्येक हितेच्छु की यही हार्दिक इच्छा थी कि इन में वस्तुतः ऐसा सौजन्य और ऐक्य उत्पन्न हो जाय जिससे कि उन सब का राष्ट्रीय और जातीय भविष्य समुज्ज्वल और समुन्नत हो ।

षोडश अध्याय।

राजक्रांति का दूरस्थ देशों पर प्रभाव।

तिथि क्रम को यथासम्भव अविच्छिन्न रखने के उद्देश्य से हमने विप्लव का बहुत विस्तार से वर्णन नहीं किया। यह तो असम्भव था कि इतने बड़े देश में एक ही प्रकार की घटनाएं सर्वत्र एक साथ ही हों। कहीं विद्रोह पहिले हुआ कहीं पीछे, कहीं उसका रूप उग्र रहा कहीं मृदु, परन्तु आगे पीछे सारे देश में ही उसका कुछ न कुछ परिणाम देख पड़ा। कलकत्ते के मार्डन रेव्यू पत्र की १९१२ की कई संख्याओं में The Revolution in China शीर्षक कई लेख निकले थे। इनके लेखक डाक्टर रामलाल सर्कार उस समय तेंगयुए नगर में रहते थे। यह नगर यूनान प्रान्त की राजधानी है और बर्मा की सीमा के पास है। जो दृश्य तेंगयुए में देखे गये सम्भवतः वही अन्य प्रान्तों में भी हुए होंगे। डाक्टर सर्कार ने लिखा है कि जब पहिले २ पार्लिमेन्ट खुली तो सारे नगर में बड़ा उत्सव मनाया गया। स्त्री पुरुष सभी सम्मिलित हुए। पाठशालाओं के लडकों और लडकियों तक ने इस जातीय त्योहार में योग दिया। फिर जब विद्रोह आरम्भ हुआ तब भी अपूर्व उत्साह देख पड़ा। शान जाति वालों को चीनी अपमान की दृष्टि से देखते हैं और विप्लव के दिनों में भी यह भाव ज्यों का त्यों बना था। यहां तक कि चीनी सिपाही शान सेनापतियों के अधीन रहना अच्छा नहीं समझते थे, फिर भी कई शान विद्रोह में सम्मिलित थे। बर्मा में जहां २ चीनियों की बस्तियाँ थीं वहां २ से स्वयंसेवक युद्ध में योग देने के

लिये चीन गये। दूर २ के देशों से प्रवासी चीनियों ने सिपाहियों के लिये वर्दियां भेजीं।

डाक्टर सर्कार के लेखों से दो एक विचित्र हास्य-जनक बातों का पता लगता है। हम पहिले ही लिख आये हैं कि विद्रोहियों ने इस बात का कड़ा प्रबन्ध किया था कि विदेशियों के साथ किसी प्रकार की छेड़ छाड न की जाय। वह जानते थे कि यदि ऐसा हो गया तो इन विदेशियों को बीच में बोलने का अवसर मिल जायगा, और कुछ नहीं तो उन की जो कुछ क्षति होगी उसकी पूर्ति तो करनी ही होगी। और वह पूर्ति भी कैसी होती थी। डाक्टर सर्कार लिखते हैं कि यदि एक सहस्र की क्षति होती थी तो चीन सर्कार को पांच या दस सहस्र देना पड़ता था। अतः इस वार जब विद्रोह हुआ तो बहुत से अंग्रेज लोग भय के मारे भाग गये पर अपनी सम्पत्ति जहाँ की तहाँ छोड़ते गये। उनको यह आशा थी कि यह लुट तो जायगी ही फिर हम चीन से एक का दस लेंगे। पर जब शान्ति होने पर वह लोग लौटे तो क्या देखते हैं कि उनके घरों पर सर्कारी ताले पड़े हैं और एक पैसे की वस्तु भी इधर से उधर नहीं हुई है। हमारे डाक्टर साहब भी इन्हीं लोगों की भाँति भागे थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि सब लोगों को इस बात से बड़ा शोक हुआ। बिचारों पर दया आती है।

विद्वत्ता चैव शौर्यं च, सौजन्यं च कुलीनताम्।
खली करोति याञ्चैका, दुःशीलेवांगना कुलम्॥

अस्तु यह तो चीन के प्रान्तों की दशा हुई। हम को देखना है कि दूरस्थ देशों पर इन बातों का क्या प्रभाव पड़ा।

दूरस्थ देशों में चीन से निकटतम जापान है। इस देश की नीति चीन की ओर सदा बुरी रही। कुछ लोगों का मत है कि यदि उस को अवकाश मिलता और उसके पास पर्याप्त धन होता तो वह चीन से घरेलू विप्लव के बीच में युद्ध छेड़ लेता। जापानी राजनीतिज्ञ चीन के

राजनैतिक प्रश्नों पर सदैव विचार किया करते थे। जापान मैगज़ीन के फ़र्वरी के अंक में काउरट ओक्युमा ने एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने चीन में प्रजातंत्र के स्थापित हो जाने की सम्भावना दिखलायी थी। एक ओर अमेरिका और दूसरी ओर चीन इन दो प्रजातंत्र देशों के बीचमें पड़ जाना जापान को रुचिकर न था। स्वयं उसकी राजसत्ता की परिस्थिति शंकापन्न हो जाती थी।

रूस भी इस विषय में जापान का भाई था। उसके राजवंश की परिस्थिति आप ही डांवाडोल हो रही थी। रूस के निहिलिस्ट आदि वैप्लविक दलों ने उसकी जड़ हिला दी थी। ऐसी अवस्था में रूसी गवर्न्मेंरट पृथ्वी में कहीं भी राजसत्ता के दुर्बल होने को अच्छा नहीं समझती थी। दूसरे, रूस को यह भी डर था कि मञ्चूरिया के मार्ग से चीनी साइबीरिया में आकर बस जायँगे। साइबीरिया का देश इतना बड़ा है और जनसंख्या इतनी कम है कि वहां करोड़ों मनुष्यों के लिये स्थान है। तीसरे, रूस चीन को प्रबल नहीं होने देना चाहता था। उसकी इच्छा मञ्चूरिया और मंगोलिया को हड़प लेने की थी। विद्रोह के बीचमें ही मंगोलिया वालों ने अपने को स्वतंत्रराष्ट्र घोषित किया। और तो कोई न बोला पर रूस ने धड़से उनके स्वातंत्र्य को अंगीकार कर लिया। इसका स्थायी परिणाम कुछ न हुआ क्योंकि मंगोलिया वालों को थोड़े ही काल में अपनी मूर्खता समझ में आ गयी और वह फिर चीन से मिल गये पर रूस के इस व्यवहार से उसकी मनोकामनाओं का पता चल गया।

अमेरिका ने, जैसा कि हम पहिले लिख आये हैं, सब से पहिले चीनी प्रजातंत्र को अंगीकृत करके उसका स्वागत किया। अमेरिका की जनता प्रायः स्वातंत्र्य-प्रिय है और वह प्रजातंत्र शासन, न्याय और स्वाधीनता की पक्षपाती है। चीन को दबा रखने में उसको कोई विशेष लाभ भी न था।

डाक्टर सुनयात सेन के सभापतिपद से हट जाने और युआन को

सभापति बनाने में इन लोगों को चकित कर दिया । इस बात की कल्पना भी अमेरिकन शक्ति के बाहर थी कि कोई मनुष्य सभापतिपद को त्याग सकता है । अमेरिका के लोग इसी के लिये प्राण देते हैं । जैसा कि बोस्टन के Christian Register में एक लेखक ने लिखा था "For American politicians and candidates, this is an-astonishing state of affairs and raises a doubt as to our absolute infallibility as promoters of public welfare and students of the principles of statesmanship" "अमेरिकन राजनीतिज्ञों और उच्चपदाभिलाषियों के लिये यह आश्चर्य-जनक अवस्था है । और हम लोगों के लोक-हित के निर्दोष साधक और राजनैतिक सिद्धान्तों के निर्भ्रामक जिज्ञासु होने के विषय में सन्देह उत्पन्न करती है," प्रजातंत्र के उदय के विषय में इसी लेखक का कथन है: "At last our self-complacent dream of superiority has been shattered by the exhibition of mental sagacity, moral power, and admirable self-control in a nation that was supposed to be fettered and shackled by superstition, formalism, and a tyrranical ruling class." "हम लोग अपनी सर्वोत्तमता का स्वप्न देख कर अपने को प्रसन्न कर लिया करते थे परन्तु जब एक ऐसी जाति ने, जो मिथ्या विश्वासों, मिथ्या उपचारों और अत्याचारी शासकों द्वारा नितान्त जकड़ी मानी जानी जाती थी, प्रातिभ दूरदर्शिता, नैतिक बल और प्रशंसनीय आत्म-संयम, का परिचय दिया तब यह स्वप्न भग्न हो गया ।"

अन्य परराष्ट्रों की अपेक्षा (अमेरिका को छोड़ कर) इंगलैण्ड का व्यवहार बहुत ही प्रशंसनीय रहा । हम कई स्थलों पर अंग्रेजी कांसलों तथा अन्य अंग्रेज़ी सज्जनों का उल्लेख कर आये हैं जिन्होंने प्रजादल

की सहायता की और शान्तिस्थापन में हाथ बंटाया। यह काम इन्होंने अपने व्यक्तिगत दायित्व पर किया। ब्रिटिश सर्कार का भी व्यवहार वैसा था जैसा कि एक तटस्थ राष्ट्र का होना चाहिये। इंगलैण्ड के परराष्ट्र सचिव, सर एडवर्ड ग्रे, ने अंग्रेज़ी राजदूत के नाम यह तार भेजा।

"We desire to see a strong and united China under whatever form of Government the Chinese people wish." "चींनके लोग अपना शासन जैसा उनको रुचिकर हो रक्खें हम चीन को ऐक्यबद्ध और बलयुक्त देखना चाहते हैं।" एक उदासीन राष्ट्र को दूसरे के घरेलू झगड़ों की ओर ऐसा ही भाव रखना चाहिये।

पर इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि अंग्रेजों को चीन के अभ्युत्थान से घबराहट नहीं हुई। कई अंग्रेज़ों को कई प्रकार की आशंकाओं ने आ घेरा। उन सब में एशियाटिक पेरिल, जिसकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है, प्रधान थी। सब से मृदु भय यह था कि जापान की भांति चीन भी व्यापार में योरप का प्रतिद्वन्द्वी होगा और थोड़े ही दिनों में चीन जापान मिल कर योरप के व्यापार को मिट्टी में मिला देगें। कुछ लोगों को यह आशंका थी कि अब पृथ्वी से आर्य्य जाति का प्राधान्य मिट कर मंगोल जाति का प्राधान्य स्थापित हो जायगा, क्योंकि चीन जापान दोनों ही मंगोल देश हैं। इस दुर्दिन को दूर करने के लिये मिस्टर हिण्डमैन नामक एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ का यह प्रस्ताव था कि भारत को स्वायत्त-शासन दे दिया जाय पर उसका सम्बन्ध इँग्लैण्ड से बना रहे। गवर्नमेण्ट ने उनके परामर्श के अनुसार काम नहीं किया, इस पर वह पाॅल माॅल गजेट में लिखते हैं "I saw, perhaps, as clearly as any man could, that the Mongolian is the coming power in Asia, and probably in the world, and I hoped to see a great and prosperous Aryan

India as a sort of breakwater against this tremendous flood. Unfortunately, as I think, our policy has tended to throw the Indians into the Mongolian Camp." "जितना स्पष्टतया कि किसी मनुष्य के लिये देखना सम्भव था, मैंने देख लिया था कि यदि सारी पृथ्वी पर नहीं तो एशिया में भविष्य में मंगोलियनों का ही प्राधान्य होगा और मुझे आशा थी कि इस अदम्यप्राय बाढ़ के सामने महान और वैभवशाली आर्य्य भारत बाँध का काम करेगा। हमारी नीति ने मेरी समझ में, भारतीयों को मंगोलियनों का साथी बना दिया है"

जिस समय चीन में राजक्रान्ति हो रही थी भारत अपने घरेलू वादविवाद में लग रहा था। प्रसिद्ध दिल्ली दर्बार हुआ था, सम्राट् पञ्चम जार्ज भारत आये थे, बंगविच्छेद पलट दिया गया था, भारत सर्कार का शासन केन्द्र कलकत्ते से दिल्ली चला गया था। अतः यहाँ लोग चीन की ओर जितना चाहिये उतना ध्यान नहीं दे सके। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि चीन के अभ्युदय का भारत पर प्रभाव पड़ा है। चीन और भारत का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है, हम ने ही चीन का नामकरण किया है; हमने ही उसको पवित्र बौद्ध धर्म्म की दीक्षा दी है; हमारा देश चीन वासियों के लिये पवित्र देश है। हम इन बातों को भूले नहीं हैं; हमें आशा है कि चीन भी इन्हें भूला न होगा। हम चीनियों के देशप्रेम, उत्साह, आत्मोत्सर्ग की प्रशंसा करते हैं। ईश्वर हम को भी यह सद्गुण प्रदान करे और चीन की नित्य सद्वृद्धि करे।

सप्तदश अध्याय ।

राजक्रान्ति के सामाजिक परिणाम ।

मानव जीवन के भिन्न २ अंगों प्रत्यगों में ऐसा सम्बन्ध है कि एक का दूसरे पर तत्क्षण प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की धार्म्मिक, राजनैतिक सामाजिक, नैतिक, मानसिक, शारीरिक, आर्थिक आदि परिस्थितियां अन्योन्याश्रित हैं, इसलिये आर्य्य शास्त्रकारों ने इनको पृथक् करने का वृथा प्रयत्न न करके सबको एक व्यापक धर्म्म के क्रोड में डाल दिया था। यहां पर हमने भी 'सामाजिक' शब्द को प्रायः इसी व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है।

राजक्रान्ति ने चीन में जो राजनैतिक परिवर्तन किया उसके साथ २ जनता के जीवन में और परिवर्तनों का होना स्वाभाविक ही था। परन्तु परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं। कुछ तो प्रत्यक्ष होते हैं। इनका अस्तित्व असन्दिग्ध होता है और यह अपने कारणों से शीघ्र ही उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे प्रकार के परिवर्तन वह हैं जो परोक्ष होते हैं और जिनके निश्चित्त अस्तित्व का पता दीर्घ काल में लगता है। जो परिवर्तन मनुष्य के बाह्य जीवन से सम्बन्ध रखते हैं वह प्रथम और जो आन्तारिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं वह द्वितीय कक्षा के होते हैं।

अभी चीनी राजक्रान्ति को बहुत समय नहीं हुआ है अतः दूसरी कक्षा के परिवर्तनों के विषय में कुछ निश्चितरूप से लिखना अनुचित होगा; अतः हम प्रथम कोटि के कुछ ऐसे परिवर्तनों का उल्लेख करेंगे जो राजक्रान्ति के प्रायः साथ ही हुए और जिनका रूप अत्यन्त प्रत्यक्ष था।

(क) आर्थिक

यों तो राजक्रान्ति होने से सारे देश की आर्थिक दशा में परिवर्तन होना सम्भव था पर यह बात तो निश्चित थी कि राजक्रान्ति के समय में ही बहुत से लोगों की आर्थिक स्थिति परिणत हो गयी। प्रायः जितने पुराने सर्कारी कर्म्मचारी थे सब निकल गये–कुछ तो मारे गये, कुछ डर के मारे भाग गये। इनके स्थान में सहस्रों नये मनुष्यों को जीविकाएं मिल गयीं। लूटपाट मार पीट के समय में कितने वंश दरिद्र और कितने वैभवशाली हो गये। जो लोग इधर उधर गुण्डे, उचक्के, लुटेरे, बने फिरते थे वह भी नयी सेनाओं में भरती हो गये–प्रति सिपाही को ६ तेल बेतन मिलता था। सामान्य कुली मजदूर तक अलभ्य हो गये। जो काम सात या आठ रुपये में हो जाता था वह अब तीस या चालीस में भी नहीं होता था।

व्यापार की गति भी बहुत कुछ रुक गयी पर व्यापारियों को किसी न किसी रूप में युद्ध के लिये बहुत कुछ सहायता देनी पड़ी। इससे उनकी आर्थिक दशा पूर्ववत् पक्की नहीं रह गयी। आगे चल कर इस बिगड़ी दशा को सुधरने में बहुत समय लगा।

(ख) वेष भूषा

शिखा का विरोध तो नवीन दल बहुत दिनों से करता आ रहा था, अब उसका अन्त ही हो गया। पर इसमें कुछ रुकावटें भी पड़ीं। लोगों को शिखा रखते २६० वर्ष हो गये थे। वह इस बात को भूल गये थे कि उनके दासत्व को सदा स्पष्ट करने के लिये ही यह प्रथा मञ्चुओं द्वारा निकाली गयी थी। अतः ग्रामीण और अन्य अशिक्षित लोगों को शिखा से एक प्रकार का प्रेम हो गया था। इसलिये क्रान्तिदल को इस विषय में बड़ी कड़ाई करनी पड़ी। चोटी कटवाने के लिये १५ दिन का अवकाश दिया गया। यदि एक बार दण्ड पाने पर भी किसी के सिर पर चोटी मिलती तो सिर काटने तक का दण्ड मिलता था।

चोटी के साथ पुराने वस्त्राभूषण का भी लोप हो गया। सामान्यतः लोग एक प्रकार की ऊँची सी टोपी दिया करते थे पर यह मञ्चुओं की चलाई हुई थी। विद्रोह आरम्भ होते ही टोपी के स्थान में एक प्रकार की नीली पगड़ी धारण की गयी पर कुछ काल में वह भी चली गयी और उसकी जगह अंग्रेजी हैट और विशेषतः नाइट कैप (रात की टोपी) ने ली।

यही गति और वस्त्रों की भी हुई है। पहिले लोग एक प्रकार का ढीला अचकन पहिनते थे। सामान्य लोग लम्बी मिर्जाई पहिनते थे। जो धनाढ्य थे उनके बटन सोने चाँदी के होते थे और इस अचकन के ऊपर सोने, हीरे, मोती, के हार पहिने जाते थे। अब अंग्रेजी फैशन के कोट, पेण्ट, टाई, कालर, ओवर कोट, की धूम है।

इसी प्रकार सैनिकों के वस्त्र में भी परिवर्तन हुआ है। जो पल्टनें नये ढंग पर क़वायद करायी जाती थीं उनकी वर्दियां तो अंग्रेजी ढंग की थीं हीं पर बहुत से पुरानी चाल के झण्डे वाले सिपाही भी थे। अब झण्डे वालों के लोप होने से सर्वत्र अंग्रेजी ढंग की ही वर्दी देख पड़ने लगी। पहिले आफिसर लोग जब बाहर जाते थे तो एक प्रकार की नालकी (या कुर्सी) पर निकला करते थे, अब सब घोड़े पर निकला करते हैं।

(ग) मानसिक

बाहरी बातों में परिवर्तन के साथ ही लोगों के मानसिक भावों में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। दृष्टि कोण ही दूसरा हो गया। जैसा पहिले लिखा जा चुका है चीन की नैतिक और राजनैतिक प्रणाली का मूल था आज्ञापालन। राजसत्ता के उन्मूलन के साथ २ उसका उन्मूलित होना स्वाभाविक ही था। जब सम्राट् का विरोध करना वैध है तब दूसरों की गणना ही क्या है। यही डर युआन को था और सत्य ही निकला।

बँधा पानी जब बाँध को तोड़ता है तो उसकी गति कुछ काल के लिये अरोध्य हो जाती है। घड़ी का पेण्डूलम जब एक ओर से नीचे उतरता

है तो बीच में नहीं ठहर सकता वरन् दूसरे सिरे तक चला जाता है। यही अवस्था मनुष्य के विचारों की होती है। बीच में रहना बड़ा कठिन है। अभी तक चीन के लोग अत्यन्त जकड़े हुए थे। उनके विचार भी दृढ़तम शृंखला से बद्ध थे; अब जो यकायक छुटकारा हुआ तो अत्यन्त निरंकुशता आ गयी। यह निरंकुशता स्थायी नहीं थी पर एक बार इसके प्रबल प्रवाह ने अनेक संस्थाओं को बहा दिया।

कांगफूत्सी और बौद्ध सिद्धान्तोंके अतिरिक्त चीनमें और भी एक प्रकार का धार्म्मिक मत प्रचलित था यह सब से प्राचीन था। इसके अनुसार बहुत से देवदेवियों की पूजा होती थी। युद्ध, वर्षा, रोगविशेष आदि के पृथक् २ अधिष्ठाता देवता थे। ग्रामों में लोग इनकी पूजा करते थे। स्त्रियां इनपर विशेष श्रद्धा रखती थीं। नियत अवसर पर पुरुष भी पुरानी परिपाटी के अनुसार इनकी उपासना कर लिया करते थे। परन्तु इनमें विशेष निष्ठा किसी को नहीं थी। लोग देवताओं को प्रसन्न रखना तो आवश्यक समझते थे पर उनकी विश्वास था कि इन देव देवियों को धोखा देना अत्यन्त सरल बात है। कई पुराने किलों में युद्ध के देवता की पूजा के लिये तोपें रहती थीं। पीछे से लोगों ने उनको हटा कर उसी आकार की लड़की को तोपें रख दीं। उनको विश्वास था कि देवता यही समझेगा कि तोपें अब भी ज्यों की त्यों है। एक अंग्रेज के पूछने पर उसे यही उत्तर मिला था "That war god, he belong number one fooloo" देवता प्रथम कक्षा का मूर्ख है"!

यह तो विद्रोह के पहिले की दशा थी। विद्रोह के आरम्भ होने पर यह ढोंग भी जाता रहा। लोगों ने कई मन्दिरों से मूर्तियों को उखाड़ कर गला डाला। मन्दिरों की सामग्री लेकर लड़ाई के काम में लायी गयी जो बड़े २ बौद्ध और अन्य मन्दिर बच गये उनमें भी उपासकों की संख्या कम हो गयी।

यह तो बुरा परिवर्तन हुआ पर कई अच्छी बातें भी हुईं। स्त्रियों की

परिस्थिति में बड़ी उन्नति हुई। अपराधियों और बन्दियों के साथ बड़ा क्रूर व्यवहार होता था वह बन्द हो गया, जनता के विचार सभी दिशाओं में उदार हो गये ।

(घ) आचार व्यवहार ।

मानसिक अवस्था का प्रभाव आचार व्यवहार पर पड़ता है, अतः लोगों के आचार व्यवहार में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था ।मानसिक निरङ्कुशता से आचार स्वच्छन्दता उत्पन्न होती है । विद्रोह के पहिले चीनियों में चाहे और कुछ दोष रहे हों या न रहे हों पर उनके सुशील होने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता था। परन्तु विद्रोह के समय से लोगों ने एक प्रकार का रूखापन धारण किया क्योंकि रूखापन 'न दबने' और 'स्वातंत्र्य' का उपलक्षण सा प्रतीत होता है। अंग्रेजी कपड़े के साथ अंग्रेजी रीति रवाज ने भी प्रचार पाया। कुर्सी पर बैठने, घर को अंग्रेजी ढंग से सजाने, छुरी कांटें से खाने, आदि का प्रचार बढ़ गया ।

मञ्चू और चीनी का भेद तो मिट ही गया था, इसका भी बड़ा प्रभाव पड़ा। जिस समाज में एक भाग जन्मतः बड़ा और दूसरा जन्मतः छोटा माना जाता है वहां कई बुरी बातें देख पड़ती हैं। जो बड़े माने जाते हैं उनमें अभिमान की मात्रा बढ़ी रहती है, जो छोटे माने जाते हैं उनमें इर्ष्याका प्राचुर्य्य होता है। यह दोनों के लिये बुरा है। भेदभाव के अभाव से अब न तो किसी को दुरभिमान करने का अवकाश था न किसी को डाह करने की आवश्यकता। बराबरी के भाव ने लोगों के आचरणों को वह स्वाभाविकता प्रदान की जो पहिले असम्भव थी। अब सब बराबर २ के मनुष्य हो गये ।

विचारों के परिवर्त्तन ने कई पुरानी रीतियोंको प्रायः बन्द कर दिया। विवाहादि के अवसर पर धूम धाम, आतिशबाजी छोड़ना, आदि होता था, यह अब झूठा आडम्बर सा प्रतीत होने लगा और त्याग दिया गया।

इसी प्रकार और भी कई छोटे बड़े परिवर्तन हुए और अभी होते ही जा रहे हैं।

कहने का यह तात्पर्य्य नहीं है कि यह सब बातें एक ही दिन में हो गयीं या प्रजातंत्र के स्थापित होने पर इनके थकायक दर्शन हो गये। ऐसा नहीं हो सकता। आचार विचार आदि का परिवर्तन यों नहीं होता। परिवर्तन के बीज तो बहुत दिन हुए बोए जा चुक थे, चीन और योरप के संसर्ग होने का यह अवश्यम्भावी परिणाम था। यूरप की सभ्यता जीवित है, कम से कम उस में जीवन को एक प्रधान लक्षण-गति—का प्राचुर्य्य है। उस में अवगुण भी अनेक हैं पर गति का एक बड़ा भारी गुण है। इधर एशिया की सभ्यता में एक प्रकार की अचलता आ गयी है। बस जहाँ, इन दोनों सभ्यताओं की मुठभेड़ हुई, एक बार तो योरप की सभ्यता अपना बल दिखला ही देती है। बा० हरिश्चन्द्र ने उसके विषय में लिखा है "भीतर तत्त्व न, ऊपर तेज़ी" भीतर तत्त्व हो या न हो, उसकी ऊपरी तेज़ी काम कर जाती है। अतः चीनी जीवन में परिवर्तन होना निश्चित और अनिवार्य्य था। मन्चू शासन के लाख रोकने पर भी उसका प्रचार हो रहा था पर अब तो कोई रोक ही नहीं रह गयी। अतः नवीनता की प्रगति और भी बढ़ गयी और जो बातें अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के विचार क्षेत्र में घूम रही थीं अब वह अपरोक्ष रूप से उनके व्यावहारिक जीवन को परिचालित करने लगीं; इसी लिये उनका इस स्थल पर वर्णन करना आवश्यक समझा गया है।

अष्टादश अध्याय ।

शिशु प्रजातंत्र की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ ।

चीन के उत्साही सुधारक दल ने राजसत्ता को हटा कर उसके स्थान में प्रजातंत्र स्थापित कर दिया । पर इतने ही से इतिकर्तव्यता नहीं हो सकती । यह तो कर्तव्य द्वार का उद्घाटन था। अपने ऊपर नये दायित्व भार को लेना था । मञ्चू शासन पर कटाक्ष करना तो सुकर था पर स्वयं उसके अवगुणों से बच कर चीन को वस्तुतः समुन्नत बनाना उतना सुकर नहीं था । जब किसी देश में इस प्रकार नया शासन स्थापित होता है तो उसके सिर अनेक नयी विपत्तियाँ घहराती हैं । टर्की में यंग टर्क दल ने नियमबद्ध शासन की नींव डाली ही थी कि उनको बॉल्कन और ट्रिपली की लड़ाइयों में हठात् फँसना पड़ा। जिसके कारण टर्की बिचारा नितान्त दुर्बल हो गया । इसी प्रकार की आपत्तियों से चीन को भी बचना था "छिद्रेषु विघ्ना बहुली भवन्ति" चीन के अनेक शत्रु इसी ताक में थे कि दुर्बलता के कुछ लक्षण प्रतीत हों और उत्पात किया जाय। दुर्बलता का होना भी कोई बड़ी बात न थी । यह असम्भव था कि इतने बड़े देश में एक साथ ही शान्ति हो जाय । अनेक प्रकार के भाव, विचार, महत्त्वेषणाएँ, राग, द्वेष, आदि जो सैकड़ों वर्षों से विशृंखलाबद्ध चले आते थे यकायक मुक्त हो गये; अब बिना कुछ काल तक संघर्षण और परस्पर परिमर्दन के इनका ज्यों का त्यों बैठ जाना असम्भव था। इसी समय नीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता की परीक्षा थी। भीतर उठी हुई तरंगों को शान्त करना और बाहर देश की प्रतिष्ठा को बनाये रखना नीति कौशल की कसौटी थी ।

युआन ने पहिले चान्द्र वर्ष के स्थान में सौर वर्ष जेन-त्स्ज स्थापित कराया। चीन का सौर वर्ष अनन्त कालचक्र का अंश माना जाता था और अनन्त काल चक्र का आरम्भ पौराणिक सम्राट् ह्वांग ति (ईसा से २६९७ वर्ष पूर्व) के समय से माना जाता था। यह सौर वर्ष अंग्रेजी वर्ष के द्वितीय मास के १८ वें दिन (१८ फ़र्वरी) से आरम्भ होता था। इस नयी गणना के अनुसार प्रजातंत्र अनन्त कालचक्र के ४६०९ वें (२६९७+१९१२=४६०९) वर्ष में स्थापित हुआ। चीन वालों ने यह बड़ा अच्छा काम किया। सुभीते के लिये उनको एक विदेशी वस्तु (कालक्रम) को अपनाना पड़ा पर उन्होंने उसको चीनी रूप देकर चीनी बना लिया। उसका बिदेशी पन ही जाता रहा।

चीन के लिये यह सौभाग्य की बात थी कि कुछ तो गत मञ्चूशासन और कुछ डाक्टर सुन के प्रयत्न से बहुत से चीनी विद्यार्थी विदेश हो आये थे। यह लोग योरप और अमेरिका के विश्वविद्यालयों से अनेक उपयोगि विद्याएँ पढ़ कर लौटे थे। नवीन शासन ने इनको इनके योग्य ऊँचे २ सर्कारी पद दिये। राजनैतिक सुधारों के विषय में परामर्श देने के लिये अमेरिका से इस तत्व के ज्ञाता बुलाये गये और सैनिक सुधार के लिये जर्मन आफिसर नियुक्त किये गये। युआन ने अपने विश्वासपात्र हांग शाओ-इ को प्रधान बनाया और अन्य मंत्रियों का चुनाव उन्हीं को सौंपा।

युआन के शासन के दो प्रकार के विरोधी थे। उत्तर में तो वह लोग थे जो मञ्चू शासन को पुनः स्थापित किया चाहते थे। यह लोग सैनिक बल का प्रयोग किया चाहते थे।। इनको तो युआन ने सहज में ही दबा लिया। पर दक्षिण में ऐसे लोग थे जो केवल प्रजातंत्र की स्थापना से सन्तुष्ट नहीं थे। इनको युआन के सुधार अत्यन्त थोदे और अधूरे प्रतीत होते थे। यह लोग वैध रूप से (अर्थात् व्याख्यानों, लेखों, आन्दोलनों, पुस्तकों, आदि के द्वारा) सदा उनका विरोध करते रहते थे। इसी उद्देश्य से इन्होंने एक (United League) 'संयुक्त संघ' खोल रक्खा था।

बात यह थी कि अभी तक लोगों को युआन पर पूरा २ विश्वास नहीं था। वह प्रजातंत्रवादी ही नहीं, प्रजातंत्र के सभापति थे, फिर भी नूतन दल उनसे परितुष्ट नहीं था। उनका पुराने शासन के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था, उनकी सारी राजनैतिक शिक्षा पुराने ढंग पर इस प्रकार हुई थी, कि यह नहीं कहा जा सकता था कि उन्होंने नवीन विचार परिपाटी को अपनाने में कहां तक सफलता प्राप्त की थी। उनकी विख्यात महत्त्वेषणा उनके आचरणों को और भी सन्दिग्ध बना देती थी वह किसी काम को पूर्ण सद्भाव से ही करें परन्तु लोगों को उनके उद्देश्य के विषय में शंका हो जाती थी। छोटी २ बातें भी इस सन्देह को बढ़ा दिया करती थीं। १३ मार्च १९१३ को गरमदल के दो प्रधान नेताओं को किसी ने गुप्त रीति से मार डाला। यह दोनों सज्जन युआन के कट्टर विरोधी थे। इनकी मृत्यु का समाचार फैलते ही, लोगों को यह सन्देह हुआ कि युआन ने इनकी हत्या करायी है। युआन ऐसे प्रतिष्ठित मनुष्य पर ऐसा सन्देह होना बड़ी ही क्षुद्रता का परिचय देता है पर तत्कालीन चीनी समाज के लिये यह कोई विचित्र बात नहीं थी। 'न रहेगी बांस, न बजेगी बांसुरी'। राजनैतिक विरोधियों से छुटकारा पाने की यह युक्ति बड़े २ चीनी राजनीतिज्ञों को प्रिय थी अतः युआन पर सन्देह होना स्वाभाविक ही था। इसी प्रकार की कई बातों का यह परिणाम हुआ कि यांगत्सजी के तटस्थ प्रान्तों में विद्रोह हो गया, जिसके शान्त करने में बड़ी कठिनाई पड़ी।

पार्लिमेण्ट के बहुत से सदस्य, जैसा कि उनका कर्तव्य था, अपनी सम्मति स्वतंत्रता के साथ देते थे। यह बात युआन को अभिमत न थी क्योंकि उनके कई प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाया करते थे। इस पर युआन ने इनमें से कई को किसी न किसी बहाने से पकड़वा लिया। इन लोगों के निकल जाने से उनका पक्ष प्रबल हो गया और पार्लामेण्ट ने उनको 'स्थायी सभापति' बना दिया। इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि

पार्लीमेंएट के सदस्यों, मंत्रियों, कर्म्मचारियों में परिवर्तन होता रहे, पर सभापति के पद पर युआन ही रहेंगे । इस चुनाव ने उनकी स्थिति और प्रबल कर दी । अब निकाले जाने का डर तो छूट ही गया, उन्हों ने अपने अधिकारों को बढ़ाने का प्रयत्न आरम्भ किया ।

शासनपद्धति में आवश्यक सुधारों पर विचार करने के लिये एक समिति नियत हुई । इसने सभापति को जो अधिकार दिये वह युआन को बहुत संकीर्ण जान पड़े अतः उन्होंने न केवल उस समिति को तोड़ दिया प्रत्युत गरम दल के सभी सदस्यों को पार्लिमेंएट से निकाल बाहर किया । लोभ, चाहे वह धन, भूमि, ऐश्वर्य्य, किसी वस्तु का हो, भयंकर विषवृक्ष है एक बार बीजारोपण होना चाहिये, फिर तो उसका विस्तार आश्चर्य्यकर प्रगति से होता है । जितनी ही तृप्ति होती है, उतनी ही तृष्णा बढ़ती है इसीसे भर्तृहरि ने व्यथित होकर कहा था 'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा' और 'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता ।'

अब युआन के सिर ऐश्वर्य्य का लोभ भूत होकर चढ़ा था । उन्होंने देखा कि जब तक पार्लीमेंएट रहेगी, कुछ न कुछ विरोध की सम्भावना बनी ही रहेगी अतः उन्होंने पार्लीमेंएट को ही तोड़ दिया । उसके स्थान में एक सचिव मण्डल (Advisory Council) नियुक्त किया गया । इन आमात्यों को वेतन मिलता था । इसमें सन्देह नहीं कि यह लोग सभी योग्य व्यक्ति थे और इनके द्वारा कई सुधार हुए । पर थे यह युआन के ही गण, स्वतंत्र राजनीतिज्ञ नहीं ।

सच पूछिये तो अब चीन की शासन पद्धति का रूप ही और हो गया था नामतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ था पर वस्तुतः राजसत्ता फिर आ गयी थी । युआन अब भी सभापति कहलाते थे पर उनकी परिस्थिति किसी स्वेच्छाचारी नरेश से कम न थी । उनके सचिव-मण्डल के सदस्य वस्तुतः उनके मंत्री थे । कहने को यही कहा जाता था कि कुछ काल में पार्लीमेंएट का अधिवेशन फिर होगा पर इस समय बिना पार्लीमेंएट के

सब ही काम चल रहा था। युआन ने चीन में वही दशा कर दी थी जो इंगलैण्ड में सन् १६२६ से १६४० तक प्रथम चार्ल्स ने की थी। वहाँ भी काग़ज़ पर शासनपद्धति म पार्लामेण्ट का निश्चित स्थान था पर उसके बिना ही काम चलाया जा रहा था। इन सब बातों को देख कर ऐसा अनुमान होता था कि अब शीघ्र ही चीन में फिर राजसत्ता पूर्ण रूप से स्थापित हो जायगी और युआन एक नवीन राजवंश के मूल पुरुष होंगे। वह कई बातें भी ऐसी करने लगे थे जो चीन के सम्राट् ही करते थे। प्रत्येक वर्ष सम्राट् स्वर्ग की पूजा करने जाया करते थे परन्तु प्रजातंत्र के स्थापित होने पर यह प्रथा बन्द हो गयी थी। १६१३ में युआन ने स्वयं स्वर्ग की प्राचीन शैली से पूजा की।

अगस्त १६१४ में महासमर आरम्भ हुआ। युद्ध का इतिहास सब ही लोग जानते हैं। जापान ने इँग्लैण्ड, फ्रांस, रूस का साथ दिया। उस ने योरप तो अपने सिपाही भेजे ही नहीं, हाँ अपनी जहाजों से अंग्रेजी साम्राज्य के पूर्वीय अंशों की अवश्य रक्षा की। एक काम उसने और किया। कियाउचाउ उस समय जर्मनी ने चीन से ले रक्खा था। जापान ने उसे हस्तगत कर लिया। जो थोड़े से जर्मन वहाँ थे वह उसकी रक्षा के लिये पर्य्याप्त नहीं थे। चीन भी अंग्रेज आदि मित्र दल से मिल गया। उसने भी इतना काम किया कि चीन के बन्दरों में जितनी जहाजें थीं उनको ज़ब्त कर लिया और जितने जर्मन मिले उनको क़ैद कर लिया इसके अतिरिक्त बॉक्सर युद्ध के समय से जो द्रव्य प्रतिवर्ष जर्मनी को दिया जाता था उसे भेजना बन्द कर दिया। उसने कई लाख मजदूर और कुली भी योरप भेजे।

इस अवसर पर जापान ने चीन के साथ बड़ा अनुचित व्यवहार किया। युद्ध के कारण सब का ध्यान दूसरी ओर था अतः कोई चीन की सहायता के लिये नहीं खड़ा हो सकता था। जापान ने क्षेत्र सूना पाकर चीन को बहुत दबाया और युद्ध की धमकी देकर उससे कई शर्तें स्वीकार

करालीं। इनमें कुछ शर्तें तो प्रकट हुईं, शेष गुप्त रक्खी गयीं।*

किसी प्रकार जापान से अपना पिण्ड छुड़ाकर, युआन फिर अपनी कूट नीति में लगे। उनका लक्ष्य प्रतिदिन प्रकट होता जाता था। यह सब की समझ में आता जाता था कि वह चीन में नया राजवंश स्थापित करना चाहते थे।

सन् १९१५ के मई या जून में चूआन ह्वाइ (शान्तिवर्द्धक गोष्ठी) नाम की एक समिति खुली। इस में सचिवमण्डल के भी कई सदस्य सम्मिलित थे। यह खुल कर केन्द्रीभूत व्यक्तिगत शासन (Concentrated individual rule) का पक्ष लेती थी। केन्द्रीभूत व्यक्तिगत शासन वह शासन है जिसमें एक व्यक्ति समस्त अधिकारों का केन्द्र हो। यह स्वेच्छाचारिता का नामान्तर मात्र है। लग भग इसी समय चीन सर्कार के एक अमेरिकन परामर्शदाता प्रोफ़ेसर गुडनाउ (Professor Goodnow) ने इसी प्रकार के शासन की स्थापना की सम्मति दी। उधर चारों ओर से सहस्रों प्रार्थनापत्र और आवेदनपत्र आने लगे जिनका तात्पर्य्य यह था कि प्रजातंत्र के स्थान में युआन मूलक राजसत्ता स्थापित हो। यह तो स्पष्ट ही था कि यह सब युआन और उनके अनुचरों की करतूत थी। यह अनुमान इस बात से और भी दृढ़ हो गया कि लियाँग किच आओ ने, जो दृढ़ प्रजातंत्रवादी थी, सचिवमण्डल से पृथक् होने की इच्छा प्रकट की।

८ अक्तूबर १९१५ को युआन ने एक घोषणा द्वारा प्रकट किया कि सचिवमण्डल के पास अस्थायी पार्लामेण्ट का एक आवेदनपत्र आया था जिससे प्रकट हुआ कि सारा 'देश कुन चूं लिह हिएन (वैध नरेश Sovereign lord with a constitution) के लिये उत्सुक

---

* यह अकीर्तिकर कथा किञ्चिद्विस्तार के साथ परिशिष्ट 'ख' में दी गयी है।

है । इस लिये युआन ने इस घोषणा में यह प्रस्ताव किया कि देश के निवासियों की इस विषय में सम्मति ली जाय ।

इस समाचार ने कई विदेशी राष्ट्रों को घबरा दिया । अमेरिका, जर्मनी, आस्ट्रिया तो चुप रहे क्योंकि चीन की घरेलू बातों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु इटली और फ्रांस के अनुमोदन से इंगलैण्ड, रूस और जापान ने युआन से यह प्रार्थना की कि इस प्रश्न का विचार युद्ध के अन्त तक स्थगित रक्खा जाय । उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया कि चीन की जनता की चाहे जो इच्छा हो, उसकी पूर्ति में विघ्न डालने की उनकी इच्छा नहीं थी; आशंका केवल यह थी कि कदाचित् कोई विपक्षी दल किसी प्रकार का उत्पात खड़ा कर दे जिसके कारण कि चीन युद्ध की शीघ्र और समुचित समाप्ति में यथार्थ योग न दे सके ।

युआन ने ऊपर से तो यह बात मान ली पर इस समय उनकी जैसी मानसिक स्थिति थी उसमें उनसे धृति की प्रतीक्षा करनी ही भूल थी वह कब का विवेक खो चुके थे और 'विवेक भ्रष्टानाम्, भवति विनिपातः शतमुखः' जिस प्रकार कीड़ा दीपक की ओर खिंचता है उसी प्रकार राज-लोभ उनको खींच रहा था । यह उनको सूझता ही न था कि वह पतनोन्मुख हो गये । लोभ ने उनकी बुद्धि पर मोह का कड़ा आवरण मढ़ दिया । न उनको अपनी शपथ की स्मृति थी, न विरोधियों के प्राबल्य का ध्यान; उनकी अन्तर्चक्षु के सामने राजसिंहासन की कल्पना ने चकाचौंध कर दी थी ।

लोभः प्रतिष्ठा पापस्य, प्रसूतिर्लोभ एव च ।
द्वेषक्रोधादि जनको, लोभः पापस्य कारणम् ॥

लोभेन बुद्धिश्चलति, लोभो जनयते तृषाम् ।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति, परत्रेह च मानवः ॥

लोभः सदा विचिन्त्यो, लुब्धेभ्यो सर्वतो भयं दृष्टम् ।

कार्य्याकार्य्य विचारो; लोभविमूढ़स्य नास्त्येव ॥

इन नीति के श्लोंको को युआन ने चरितार्थ कर दिया।

तीन बार उनको सम्राट् पद प्रजा की ओर से दिया गया और तीनों वार उन्होंने अस्वीकार किया। यह सब ढकोसला था। चौथी बार १३ दिसम्बर १९१५ को वह अभिषिक्त हो ही गये। दिखलाया यह गया कि इच्छा न होते हुए भी उनको प्रजा की बात माननी पड़ी।

यह तो हुआ पर युआनने अभी सम्राटकी उपाधि धारण नहीं की हां, काम कई ऐसे किये गये जो सम्राट ही कर सकते हैं। १ ली जन-वरी १९१६ से हुङ्गहिएन (महाविधान) नामका एक नया सम्वत् चलाया गया। बहुतसे लोगोंको ड्यूक, प्रिंस, वैरन आदि की उपाधियां दी गयीं। विदेशी राष्ट्र अवाक रह गये। डाक्टर सुन और उनके अनुया-इयों की सभी आशङ्काएं सच्ची निकलीं। युआन अपने को न संभाल सके, धोखा दे ही गये।

पर अब चीन पुराना चीन न था कि इतने पर चुप बैठा रहता! सारे देश में अपरितोष की ज्वाला भड़क उठी। विद्रोह के लक्षण स्फुट होने लगे। युनान प्रान्त ने २५ दिसम्बर को अपने को पृथक और स्वतंत्र प्रजातंत्र घोषित किया। (यद्यपि युनान अब चीन का ही अंश है, पर यह दिन सारे चीन में त्योहार माना जाता है। यह युनानका पारितो-षिक है।)

युआन ने देखा कि इस प्रचण्ड आग का सामना करना असम्भव होगा। यदि कोई नितान्त स्वार्थी व्यक्ति होता तो स्यात् ऐसे प्रयत्न करके देश को रसातल ले जाता पर युआन इतने क्षुद्र नहीं थे। वह स्वार्थी और महत्वाकांक्षी होने परभी देशभक्त थे। अतः उन्होंने स्वयं आपत्ति सहन करना ही ठीक समझा। अपमान की ओर ध्यान न देकर सारा राजसी ठाट दूर कर दिया।

पर इतने पर भी शान्ति न हुई। उनके विरोधियोंने उनकी सारी

कूटनीतिका पर्दा खोल दिया। उनके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। इस अवस्था में, जब कि न केवल उनके राजनैतिक जीवन प्रत्युत संसारी जीवन का भी अन्त निकट था उन के लिये यह बड़े शोक की बात हुई। उन को इस का मार्मिक दुःख हुआ। परिताप, पश्चात्ताप, नैराश्य, ने उनके भौतिक शरीर को भी रोगग्रस्त कर दिया। ६ जून १९१६ को उनका देहान्त हो गया।

इसके दूसरे दिन उपसभापति लि युआन-हुङ्ग ने सभापति का पद ग्रहण किया और त्वान कि—ज्वाइ प्रधान हुए।

शिशु प्रजातंत्र के लिये यह कठिन परीक्षा का समय था। सम्भव है कि युआन के सम्राट हो जाने पर चीन का शासन अत्युत्तम होता पर प्रजातंत्र का तो लोप हो ही जाता और गोरी ज़ातियों को यह कहने का अवसर मिल जाता कि प्राच्य जातियां इस प्रकार के शासन के योग्य नहीं हैं। चीन के प्रजातंत्र की रक्षा हो जाने से प्राच्य जगत मात्र को उक्त शिक्षा मिल रही है। शिशु तो था ही, दांत निकलते समय कष्ट होना स्वाभाविक ही था। पर इस कष्ट को उत्तीर्ण करके उसने अपने सजीव होने का परिचय दिया है। यह भी उसके लिये एक प्रकार से सौभाग्य की बात थी कि जिस समय वह इस प्रकार आपदग्रस्त था उस समय किसी और राष्ट्र को उसकी कठिनाईयों से अनुचित लाभ उठाने का अवकाश ही नहीं था, नहीं तो न जाने क्या अनर्थ हो जाता।

एकोनविंशत अध्याय ।

चीन का भविष्य ।

भविष्यद्वक्ता का काम अत्यन्त कठिन होता है। भौतिक पदार्थ जिन नियमों से परिचालित होते हैं उनको जान लेना अपेक्षया सरल है परन्तु चैतन्य जगत् के नियम अत्यन्त टेढ़े हैं तिस पर मनुष्य तो स्वयं एक जगत् है। मनोविज्ञान शास्त्र को उसकी आधी वृत्तियों का भी पता नहीं है। क्षण २ में न जाने क्या २ रूप पलटता है। यह अवस्था तो एक मनुष्य की है। जनसमूह का तो कहना ही क्या है। उसकी वृत्ति तो स्वभावतः विक्षिप्त रहती है। 'जितने मुँह उतनी बात' इसके अतिरिक्त यह भी कहना कठिन है कि किसी समूह विशेष पर किधर से क्या बाहरी प्रभाव किस समय पड़ेगा। इसी लिये किसी देश या जाति या राष्ट्र के भविष्य के विषय में कुछ कहना साहस मात्र है।

परन्तु इतिहास भी विज्ञान का एक अंग है। उसके अध्ययन से प्रतीत हुआ है कि मानव समाज कुछ न कुछ नियमबद्ध अवश्य है। उन नियमों को ध्यान में रखते हुए, हम चीन के विषय में कुछ कहने का साहस करते हैं।

पहिली बात जो स्मरण रखने योग्य है वह यह है कि चीन सहस्रों वर्ष से संसार की सभ्यतम देशों में गण्यमान रहा है। यदि इधर एक सौ वर्षों की बात छोड़ दी जाय तो वह योरप या अमेरिका से किसी बात में पीछे न था। इस का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस देश का इतिहास भूतकाल में महत्त्वपूर्ण नहीं था उसको भविष्यकाल में भी कठिनाई पड़ेगी

यों तो आफ्रिका के हबशी भी उन्नति करके पृथ्वी की श्रेष्ठतम जातियों में अनुकरणीय हो सकते हैं पर यह बात सम्भव होते हुए भी कष्टसाध्य है। इस जाति के नेताओं का मार्ग कण्टकाकीर्ण होगा। उनको बाहर से आदर्श लेने पड़ेंगे। उनको अपनी जाति की कहानियों में ऐसे नाम ही न मिलेंगे जिनकी स्मृति दिला कर वह जनता को प्रोत्साहित कर सकें। सिवाय अन्य जातियों की स्पर्धा के वह उन्नति के लिये और कोई आयोजन ही नहीं ढूँढ़ सकते पर जो जातियां सभ्य और उन्नत रही हैं उनकी अवस्था ही और है। पतित होने पर भी उनमें उन्नति के बीज हैं। जो गिरा है वह उठ भी सकता है। चीन के पुराने इतिहास, उसके प्राचीन सम्राटों की यशोगाथा। में अब भी जादू भरा हुआ है। उन्नति पथ पर आरूढ़ हो कर चीन किसी और देश का अनुकरण या किसी और राष्ट्र से प्रतिस्पर्धा नहीं करता; उसका भविष्य उसके भूत को पकड़ना चाहता है; चीन दरिद्र की भाँति दूसरों की सम्पत्ति की लालच नहीं करता, वह अपना खोया धन ढूँढ़ता है। इससे आशा होती है कि उसका भविष्य सहज ही उज्ज्वल होगा।

दूसरी बात जो चीन के पक्ष में है वह यह है कि उसकी जनसंख्या बहुत बड़ी है। इतना ही नहीं; यह संख्या निकम्मे, आलसी, दुर्बल लोगों की नहीं, परिश्रमी और बलवान मनुष्यों की है, चालीस करोड़ कोई सामान्य संख्या नहीं है, पृथ्वी भर की जनसंख्या के पञ्चमांश से भी अधिक है। अभी तक यह लोग सुसंगठित नहीं हैं अतः इनकी सारी शारीरिक, और मानसिक, शक्ति एक ओर न लग कर छिन्न भिन्न हो जाती है। जिस समय यह शक्ति केन्द्रीभूत होगी उस समय इसका सामना एक तो क्या दस राष्ट्र मिल कर भी न कर सकेंगे। चीन के लोग असामान्य परिश्रमी होते हैं; उनको मद्यपान की लत नहीं, उनका वस्त्रभोजन योरप वालों की भाँति महँगा नहीं होता; उनका देश प्रत्येक प्रकार के भूमिज तथा खनिज सम्पत्ति से समृद्ध है, फिर उनकी भावी उन्नति में सन्देह ही कैसे किया जाय?

पहिले समय में भी चीनियों ने सहयोग के अच्छे उदाहरण दिये हैं। सन् १६४३ में एक लुटेरे ने बड़ा उत्पात मचा रक्खा था, उसके पास बहुत सी जहाजें थीं पर चीन सर्कार के पास इनकी कमी थी। वह फार्मोसामें रहता था और वहाँ से आ आ कर समुद्र किनारे के नगरों को लूटता था। अन्त में सर्कार के परामर्श से एक युक्ति निकाली गयी। समुद्र तट के सारे निवासी अपना २ घर छोड़ कर अपनी सारी सम्पत्ति ले कर ६ कोस भीतर की ओर चले गये। चीन का समुद्र तट १२००$\frac{1}{3}$ कोस लम्बा है इन लोगों की संख्या ३०,०००,००० थी। डाकुओं को किनारे लूट मिलनी बन्द हो गयी और भीतर घुसने का साहस उनको होता ही न था। अन्त में वह हार मान कर चले गये। साढ़े बारह सौ कोस के रहने वाले तीन करोड़ मनुष्यों का इस प्रकार मिल कर काम करना सामान्य बात नहीं है।

चीन की 'कृषक सेना' का इतिहास चीनियोंके धैर्य्य का अच्छा उदाहरण है। एक वार तुर्किस्तान से एक सेना चीन में ३५० कोस तक घुस गयी। जो चीनी सेनापति उसका सामना करने के लिये भेजे गये उनके पास पर्य्याप्त सेना न थी उन्होंने शत्रु को हराने की एक अपूर्व युक्ति निकाली। तुर्की सेनाके सामने चीनी सेना ने पड़ाव डाल दिया और कुछ भूमि ठीक करके खेती करने लग गये। इससे उसने अपने काम भर अन्न उत्पन्न कर लिया। उधर तुर्क अपने देश से तो दूर पड़ गये थे, सिवाय लूट मार के अन्न कहां से पाते। लूट मार से कुछ तो आस पास के ग्रामीण उनको छेड़ते थे, कुछ चीनी सिपाही उपद्रव मचाते थे। आगे बढ़ना चीनी सेना ने ही रोक दिया था। अतः उनको कुछ पीछे हटना पड़ा। चीनी सेना ने उनकी छोड़ी हुई भूमि पर पड़ाव डाल कर वहां भी उसी प्रकार खेती का प्रबन्ध किया। कभी २ तो तुर्कों को झख मार कर चीनियों से ही प्रार्थना कर के अन्न मोल लेना पड़ता। इसी प्रकार धीरे २ तुर्की सेना पीछे हटती गयी। यहाँ तक कि उसे चीन ही छोड़ना पड़ा। यह लड़ाई तो क्या हुई, एक प्रकार का सत्याग्रह हुआ।

वर्तमान काल में चीनी प्रजा ने दृढ़ प्रतिज्ञता का अच्छा परिचय दिया है। जब अँग्रेज सर्कार से अफीम की व्यापार बन्द होने के विषय में राजीनामा हुआ तब से इस विष के दमन का बड़ा प्रबल प्रयत्न हो रहा है। इस में सन्देह नहीं कि अब भी चीन में बहुत से अफीम खानेवाले हैं और चोरी २ अफ़ीम बनायी भी बहुत जाती है पर चीन सर्कार और अधिकांश सुशिक्षित चीनियों के सद्भाव और स्वार्थत्याग में सन्देह नहीं।

व्यापार बन्द होने से अफ़ीम का भाव बढ़ गया। बन्द होने से प्रथम तीन वर्षों के भीतर भारत से पहिले की अपेक्षा १५३०० पेटियाँ कम गयीं पर भाव बढ़ जाने से ७४६,००० पौण्ड अधिक लाभ हुआ। इन्हीं तीन वर्षों में चीन में पैदा हुई अफीम की ४३८,८०० पेटियाँ कम बिकीं। इन से इसी हिसाब से $\frac{४३८,८००}{१५,३००}$ × ७४६,००० = २०,८८८,००० पौण्ड का लाभ होता। अतः दोनों मिला कर तीन वर्षों में २१,६३४,००० पौण्ड अर्थात् ३२४,५१०,००० रुपये की क्षति हुई। जो देश एक दुर्व्यसन के त्याग में इतनी आर्थिक हानि उठाने के लिये कटिबद्ध है वह सब कुछ कर सकता है।

चीनी जनता के यह गुण उसके भावी अभ्युदय की सूचना देते हैं। उसके अवगुण भी दूर हो रहे हैं। मञ्चू शासन ने चीनियों को कापुरुष बनाने का पूरा प्रयत्न किया था। सैनिक शिक्षा और शस्त्राभ्यास से पृथक रहते २ चीनी लोग सिपाही की वृत्ति को निंद्य समझने लग गये थे। पर अब वह बात चली गयी है। थोड़े ही दिनों में चीन करोड़ों की सेना प्रस्तुत कर सकता है।

उसको अभी अनेक काम करने हैं। उत्तर दक्षिण का झगड़ा मिटा कर देश में ऐक्य फैलाना है। बिना ऐक्य के न तो वह अपनी रक्षा कर सकता है, न अपनी महती सम्पत्ति से काम ले सकता है, न अपनी प्रतिष्ठा रख सकता है। उसके शत्रु अनेक हैं परन्तु उसके पास अभ्युत्थान के साधनों की कमी नहीं है।

क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महतान्नोप करणे ।

उसके सिर बड़ा भारी दायित्व है, उसको स्वार्थ के साथ २ परार्थ भी सिद्ध करना है । प्राचीन जगत् के देशों में से वही एक ऐसा देश बच रहा है जो अब तक स्वतंत्र है; प्राच्य जगत् के गण्य मान्य देशों में वही ऐसा देश है जिसने भौतिक लाभों के लिये अपनी आत्मा को बेच न दिया हो । उसको वर्तमान् जगत् में ऐसा व्यवहार करना है जिससे प्राचीन जगत् की नाम हँसाई न हो जिससे वह अब भी प्राच्य जगत् के लिये आदर्श बन सके ।

परिशिष्ट 'क'

सम्राट् क्वांगह्सू का सुधारेच्छा का कथन हो चुका है। नीचे की विज्ञप्ति से उनकी तीव्र इच्छा के साथ ही उन कठिनाइयों का भी पता चलता है जो सुधार में बाधा डालती थीं जब स्वयं सम्राट को इस प्रकार नैराश्य के वशीभूत होना पड़ता था तब सामान्य लोगों की क्या दशा रही होगी—

Let the farce of ruling go, let poison and assassination come. With death. I shall deliver up my Imperial charge. With death, I shall be worthy of my 400.000,000 subjects. I would rather be assassinated and have my will made known to the people, than be a prince under a foreign yoke, or have myself saved to serve as a menial, and bear the disgrace of a lost empire. From the time I was made to ruleten years ago, I have secretly been longing all the time for an spportunity to act. I hated the idea of losing Anam. Again I was indignant at the idea of being shorn of Manchuria and Formosa and a third time 1 was indignant at being shorn of Kiaochaw and Port Arthur. My mind being full of indignation, I deeply pondered over all the circumstances, and I saw no other course but to risk my life on behalf of the Empire."

'राज करने का स्वांग जाने दो, (उसके स्थान में) विष और वध-काण्ड आने दो। मृत्यु के साथ ही, मैं साम्राज्य के भार से मुक्त हो

जाऊंगा। मैं मर कर अपनी चालीस करोड़ प्रजा के योग्य हूंगा। मुझे बध किया जाना स्वीकार है पर मैं चाहता हूँ कि मेरी प्रजा मेरी इच्छा को जान ले। मैं यह नहीं चाहता कि विदेशियों के नीचे रह कर राज करूं या अपने प्राण बचा कर सेवक की भांति रहूं या साम्राज्य खो देने के अपमान को सहन करूं। जब से आज से दस वर्ष पूर्व से मुझ से राज कराया जा रहा है, मैं काम करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूं। अनाम का निकल जाना मुझे अत्यन्त अप्रिय था। फिर मञ्चूरिया और फ़ॉमासा के जाने से मुझे दुःख हुआ; तृतीय बार कियाउचाउ और पोर्ट आर्थर के छिन जाने से मुझे क्रोध हुआ। मेरा हृदय क्रोध से भर गया। सब बातों पर गम्भीर विचार करने पर मैंने देखा कि इसको सिवाय और कोई उपाय नहीं है कि मैं साम्राज्य के लिये अपने प्राण संकट में डाल दूं।'

इस में सन्देह नहीं कि सम्राट् ने अपने प्राण संकट में डाले इसका जैसा कि वह समझते थे वह फल तो न हुआ उनका बध तो किसी ने किया नहीं परन्तु राजमाता ने उनको एक प्रकार का वन्दी बना दिया।

परिशिष्ट 'ख'

१६१५ के मार्च मास में जापान ने चीन के सामने निम्न-लिखित छ शर्तें उपस्थित कीं और इस बात पर आग्रह किया कि चीन उनको तत्काल स्वीकार कर ले—

(१) फेंगतिएन प्रान्त में खानों पर स्वत्व जापान को मिले।

(२) दक्षिणी मञ्चूरिया में रेल बनाने के विशिष्ट अधिकार जापान को मिले।

(३) किरिन-चंगचुन रेलवे का प्रबन्ध ६१ वर्ष के लिये जापान को सौंप दिया जाय।

(४) दक्षिणी मञ्चूरिया और पूर्वीय मध्य मंगोलिया में जापानी पुलिस विशेषज्ञ नियुक्त किये जायँ और यदि आवश्यकता हो तो दक्षिणी मञ्चूरिया के लिये जापानी सैनिक राजनैतिक और आर्थिक विशेषज्ञ नियुक्त किये जायँ।

(५) चीन दक्षिणी मंचूरिया के टैक्सों की जमानत देकर किसी से ऋण न ले। यदि फेंगतिएन के लिये आवश्यकता हो तो जापान से ऋण लिया जाय।

(६) जापानी जहाँ चाहें दक्षिणी मंचूरिया में स्वतंत्रापूर्वक बस सकें, भूमि मोल ले सकें और व्यापार कर सकें।

इन शर्तों को मान लेने का अर्थ यह होता कि थोड़े दिनों में जापान सारे दक्षिणी मंचूरिया को चुपचाप निगल जाता। युआन ने इनको अस्वीकार किया। इस पर जापान ने कड़ाई से काम लेना चाहा। ऐसा प्रतीत हुआ कि चीन जापान में फिर लड़ाई होगी पर किसी तरह शान्ति हो गयी। यह कहना कठिन है कि शान्ति किन शर्तों पर हुई क्योंकि सन्धि की बहुत सी शर्तें गुप्त रक्खी गयीं।

१६१६ के आरम्भ में फिर जापान ने कुछ ऐसी ही शर्तें उपस्थित

कीं। इस बार अमेरिका का ध्यान इस ओर गया, स्यात् इसी का यह परिणाम हुआ कि इस बार बात बहुत बढ़ने न पायी।

युआन ने सम्राट् बनने की इच्छा प्रकट करके जापान को और भी अवसर दे दिया। उसको चीन के भिन्न २ राजनैतिक दलों को एक दूसरे से लड़ा देने का अच्छा अवकाश मिल गया।

'जापान मैगज़ीन' में एक लेखक ने चीन के प्रति जापान की जो नीति है उसे इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है।

"Those who neglect to keep themselves well-informed as to their real interests deserve no sympathy if they fail. If the leaders of China are too egotistic to take an adequate interest in what is for the good of their country, what hope is their for China?

If she persists in her opposition to Japan there is no country of earth can save her. Japan will take just what measures she deems best under the circumstances."

'यदि वह लोग जिन को अपने हित का पूरा २ ज्ञान नहीं है सफलता प्राप्त न कर सकें तो वह सहानुभूति के पात्र नहीं होते। यदि चीनके नेता इतने स्वार्थी हैं कि वह उन बातों पर पूरा २ ध्यान नहीं दे सकते जिनमें चीनका कल्याण है तो चीनके लिये क्या आशा हो सकती है! .... यदि वह (चीन) जापान का विरोध करने पर आग्रह करे तो पृथ्वी का कोई देश उसे बचा नहीं सकता। ऐसी दशामें जापान जो कुछ उचित समझेगा करेगा"

चीन जापानका बैर अभी चला ही जाता है। वर्तमान सन्धि परिषद् भी इस झगड़े को न सुलझा सका "दैवो दुर्बल घातकः" उसने भी जापान का ही पक्ष लिया।

परिशिष्ट 'ग'

चीनका क्षेत्रफल ४, ३००,००० वर्ग मील अर्थात् लगभग १,७७५००० वर्ग कोस और जनसंख्या लगभग ४००,०००,००० है अर्थात् प्रतिवर्ग कोस ३७२ मनुष्य रहते हैं।

चीन १८ प्रधान प्रान्तों में विभक्त है। इनके अतिरिक्त अब मञ्चूरिया ३ टुकड़ोंमें बांटा गया है और तुर्किस्तान एक पृथक प्रान्त बनाया गया है। इस प्रकार कुल २२ प्रान्त हुए। प्रधान प्रान्तोंके नाम यह हैः—चेहकियांग, चिहली, फूकिएन, नानहुइ, हानान, हूनान, हूपे, कानसुह, कियांगसी, कियांगसू, क्वांगसि क्वांगतुंग, क्वाइ चाऊ, शान सि, शानतुंग, स्जेचुआन, शेंनसी, युनान, ।

विद्रोहके पहिले वार्षिक आय लगभग २८४,१५०,००० तेलथी, (१ तेल लगभग २$\frac{3}{4}$रु:) उस समय चीन सर्कार की ऋण १४०,०००,००० पौण्ड था। इस पर ७,४२७,४५० पौण्ड व्याज देना पड़ता था (१ पौण्ड लग भग १५ रु०)
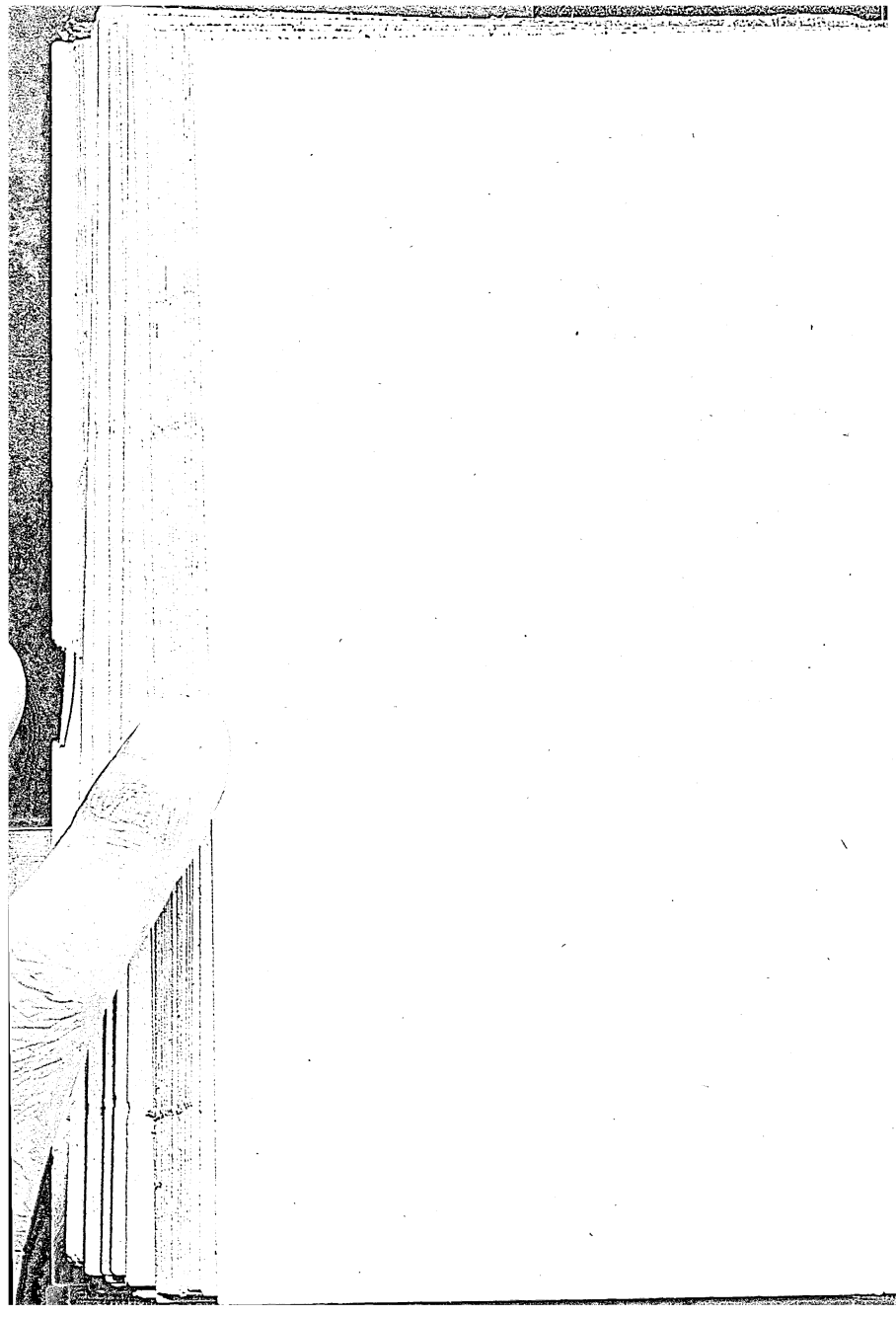
इस पुस्तक में उल्लिखित चीनी इतिहास की प्रधानतम् घटनाएं।

(मन्चू शासन की स्थापना के समय से)

मन्चू राजस्थापन—सन् १६८७।

ताइपिंग विद्रोह—सन् १८५०—१८५७

चीन और फ्रांस का युद्ध—सन् १८८४

चीन और जापान का युद्ध—सन् १८९४—१८९५

शिमोनोसेकी की सन्धि—८ अप्रैल १८९५

कोरियन महारानी की हत्या—८ अक्तूबर १८९५

जर्मनी द्वारा कियाउ चाउ का अपहरण सन् १८९७

रूस द्वारा पोर्ट आर्थर और तालिएन वान ,, ,, ,,

इंगलैण्ड द्वारा वाइ हाइवाइ ,, ,, ,,

फ्रांस द्वारा क्वांग चाउ ,, ,, ,,

सम्राट् क्वांग हसू की सुधार घोषणा—सन् १८९८

तिब्बत में अँग्रेज़ों का प्रवेश—सन् १९००

बॉक्सर विद्रोह—सन् १९००—१९०१

रूस जापान युद्ध की घोषणा—१० फ़रवरी १९०४

कोरिया में जापानी संरक्षकता की स्थापना—१७ नवम्बर १९०५

कोरिया के स्वातन्त्र्य का अन्त—१ अगस्त १९०६

चीन सर्कार द्वारा सुधार की प्रथम घोषणा—सितम्बर १९०६

,, ,, ,, पुनः घोषणा—फर्वरी १९०७

सम्राट् क्वांग हसू की मृत्यु—नवम्बर १९०७

राजमाता की मृत्यु ,, ,,

सम्राट् ह्सु आनतुंग (पुयि) का अभिषेक-२ दिसम्बर १६०७

युआन की पदच्युति-जनवरी १६०८

प्रान्तीय सभाओं की पहिली बैठक-१४ अक्तूबर १६०६

जातीय सभा ,, ,, ,, ३ अक्तूबर १६१०

पार्लिमेंएट के शीघ्र बैठने की घोषणा-४ नवम्बर १६१०

हैकांड का प्रजावर्ग के हाथ में आना-११ अक्तूबर १६११

पश्चात्तापात्मक घोषणा-३० अक्तूबर १६११

युआन का प्रधान मंत्री चुना जाना-१ नवम्बर १६११

स्जेचुआन प्रजातंत्र स्थापना की घोषणा-२७ नवम्बर १६११

युद्ध का थमना-३ दिसम्बर १६११

राजकुमार चुनका पदत्याग-६ दिसम्बर १६११

संधिपरिषत् की प्रथम बैठक—१८ दिसम्बर १६११

नानकिंग पतन—२० दिसम्बर १६११

सुनयात सन का सभापति चुना जाना—२६ दिसम्बर १६११

सम्राट् ह्सु आन तुंग का पदत्याग-१२ फरवरी १६१२

नैकिंग में स्वातंत्र्य उत्सव-१४ परवरी १६१२

डाक्टर सुनयात सनका पदत्याग-१५ फरवरी १६१२

युआन का सभापति पदग्रहण-१० मार्च १६१२

युआन का अभिषेक-१२ दिसम्बर १६१५

युआन की मृत्यु-६ जून १६१६

प्रधान सहायकपुस्तकों की सूची

---

1. Encyclopaedia Britannica—Vol. VI-(11th edition).

2. Historians' History of the world—Vo XXIV

3. China by R. K. Douglas (Story [illegible] Nations' Series).

4. Empires of the Far East (Vol. II) by Lancelot Lawton.

5. Sun Yat Sen and the Awakening of China by James Cantlie and C. Sheridan Jones.

6. Li Hung Chang by R. K. Douglas.

7. Problems of the Middle East by Angus Hamilton.

8. China by E. H. Parker.

और 'Modern Review' की पुरानी फ़ाइलें।